# रसरत्नाकर

जिसमें

शृंगारादि नवों रसों का सम्यक् वर्णन है

—रचयिता—

साहित्याचार्य्य बाबू जगन्नाथ प्रसाद भानु-कवि,

रिटायर्ड ई. ए. सी. बिलासपुर, मध्यप्रदेश।

जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर में मुद्रित।

सन् १६१६ ई०

प्रथम बार।




Printed by S Abdulla Manager at the "Jagannath Press" Bilaspur, C P

and

Published by Mr B-Jagannath Prasad

Proprietor




# विज्ञप्ति ।

प्रिय पाठकवृन्द !

काव्य प्रबन्धमाला की तीन पुस्तकें १ छंद सारावली, २ काव्यालं और ३ अलंकारप्रश्नोत्तरी आपकी भेंट कर चुका हूं आज यह चौ पुस्तक **"रसरत्नाकर"** भी आपकी सेवा में सादर समर्पित है। इ शृंगारादि नवो रसो का सुगम बोध निरूपण है। रसमयी काव्य में अल किक आनन्द प्राप्त होता है इसीलिये पूर्व्वाचार्य्योंने कहा है 'वाक्य रसात्म काव्यम' अर्थात् रसही काव्य की आत्मा है, परन्तु वह रस कैसे उत्पन्न हो है उसके लिये कौन कौनसी सामग्री चाहिये बस इसी का इस पुस्तक सम्यक् वर्णन है यदि विद्यार्थीगण क्रमपूर्वक इसका पठन और मनन क तो शीघ्रही पूर्णरूप से लाभान्वित होंगे। इत्यलम्

विनीत—

**जगन्नाथ प्रसाद,**

भानु कवि

॥ श्रीमुरलीधरायनमः ॥



# विषयानुसार सूचीपत्र ।

| | | |
|---|---|---|
| पीठ मर्द | ५९ | A clever companion in discourse who assists one in securing his mistress |
| विट | ५९ | A cheat, a cunning chap |
| चेटक | ५९ | Any one who does a set task skilfully |
| विदूषक | ६० | Jester, witty, humorous |
| हितकारिणी | ६० | Well wishing female companion |
| व्यंग्यविदग्धा | ६० | A woman skilful in insinuations |
| अंतरंगिणी | ६० | A female companion in secrecy A confidant |
| बहिरंगिणी | ६१ | An ordinary female friend |
| मण्डन | ६१ | Adornment |
| नखशिख | ६१ | Charming description of every limb of body from toe to top |
| शिक्षा | ६४ | Advice |
| उपालम्भ | ६५ | Taunt |
| परिहास | ६५ | Joke |
| दूती | ६५ | A female messenger |
| नुति (स्तुति) | ६६ | Eulogy |

| | | |
|---|---|---|
| विरह | ६७ | Feeling of love in sep tion |
| प्रबोध | ६७ | Awaking |
| संघट्टन | ६७ | Encounter |
| स्वयदूतिका | ६८ | Self messenger |
| वसन्त | ६८ | Spring |
| होली | ६९ | Holi festiva |
| ग्रीष्म | ७१ | Summer |
| पावस | ७१ | Rains |
| हिंडोरा | ७२ | A swing |
| शरद | ७२ | Autumn |
| हेमंत | ७३ | Winter |
| शिशिर | ७३ | Cold season |
| पवन | ७४ | Air, wind, |
| शीतल | ७४ | Cold |
| मंद | ७४ | Slow |
| सुगंध | ७४ | Fragrant |
| वन | ७४ | Forest |
| चन्द्र | ७४ | Moon |
| उपवन | ७४ | Garden |
| चांदनी | ७४ | Moonlight |
| पुष्प | ७४ | Flower |
| पराग | ७४ | Flower, poller |
| अनुभाव | ७५ | External mani festation of internal feeling |
| सात्विकअनुभाव | ७५ | Natural emo tions |
| स्तम्भ | ७५ | Immobility |
| स्वेद | ७६ | Perspiration |
| रोमांच | ७६ | Horripilation |
| स्वरभंग | ७६ | Indistinctness of utterance |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| धृति | ८६ | Repose of mind, determination | निद्रा | ९३ | Sleep |
| आलस | ८७ | Indolence | व्याधि | ९३ | Painful co dition of mind |
| विषाद | ८७ | Despair | मरण | ९३ | Death |
| मति | ८८ | Prudence | अपस्मार | ९४ | Epileptic co vulsions |
| चिंता | ८८ | Painful reflection | आवेग | ९४ | Agitation |
| मोह | ८९ | Perplexity | त्रास | ९४ | Fear |
| स्वप्न | ८९ | Dream | उन्माद | ९५ | Delirium |
| विबोध | ८९ | Waking | जडता | ९५ | Loss of fa ulty |
| स्मृति | ९० | Recollection | चपलता | ९६ | Rashness |
| अमर्ष | ९० | Indignation | वितर्क | ९६ | Descrimina tion |
| गर्व | ९१ | Pride | स्थायीभाव | ९७ | A permane or lastin feeling |
| उत्सुकता | ९१ | Impatience | रति | ९८ | Love |
| अवहित्थ | ९१ | Dissimulation | हास | ९९ | Laugh |
| दीनता | ९१ | Depression | शोक | १०० | Sorrow |
| हर्ष | ९२ | Joy | | | |
| व्रीडा | ९२ | Bashfulness | | | |

## भूल संशोधन ।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ६ | १६ | शशि मे | शशि में |
| १६ | २३ | कहुँ | कहँ |
| ४७ | २३ | डारी तो | डारो ता |
| ७५ | ६ | सात्वि | सात्विक |

औरहु याके दोष जे, लिखिहैं सुजन विचारि।
है कृतज्ञ देहौं तिनहिं, पुनरावृत्ति सुधारि॥

अथ

# रसरत्नाकरः प्रारभ्यते ।



जय जय जय राधा रमण, हरण मोह भव शूल ।
रसिक शिरोमणि सावरे, सदा रहहु अनुकूल ॥

## रसों का संक्षिप्त वर्णन ।

जब हम लोग किसी उत्तम काव्य को पढते या सुनते है या किसी उत्तम नाटक को देखते है तो बहुधा कहा करते है कि वाह क्याही रमणीय वर्णन है, क्याही सुन्दर दृश्य है, यह विषय क्याही सरस है बस उससे जो विशेष आनन्द प्राप्त होता है वही रस है यह एक प्रकार का विलक्षण आनन्द है जो अनिर्वचनीय है साहित्य शास्त्र मे ऐसे लोकोत्तर अर्थात् अलौकिक आनन्द को ही रस कहते हैं। अलौकिक आनन्द यह है जो स्वार्थ से रहित हो और जिस आनन्द मे स्वार्थ है वह लौकिक आनन्द है जैसे किसी मनुष्य ने आकर किसी को आनन्द समाचार सुनाया कि आप के घर म पुत्र रत्न पैदा हुवा अथवा आप के वेतन की वृद्धि ५००) पाच सौ से ६००) छे सौ रुपये मासिक की हुई। इस समाचार से उसी को विशेष आनन्द होगा जिसको लाभ पहुचा सब को नहीं क्योकि इसमे स्वार्थ है ऐसे आनन्द को लौकिक आनन्द कहते है और उसी से यदि यह कहा जाय कि अमुक सेठ बडा दानी है देखो कोई याचक उसके द्वार पर जाता है तो शीघ्रही पौर के किवार दे देता है घर मे सब को गालिया दिया करता है, साधुओं को दोष देता है, यदि कहीं भिक्षुक से भेट हो गइ तो जवाब दे देता है, बात कहते रो देता है, जूते देते भाजी मार देताहै, पगडी के बद बाध देता है, बालो की गाठ दे देता है, धोती की कछ देदेता है कहा तक कहैं विचारे को देने के

मारे फुरसत ही नहीं मिलती। कहिये क्या कोई इससे बढ़कर दानी हो सकता है? तो इन वाक्यों के सुनने ही वह परमानंदित होकर अवश्यही हँस पड़ेगा और निकटवर्ती श्रोताओं को भी विशेष आनन्द होगा बस यही अलौकिक आनन्द है क्योंकि यह स्वार्थ से रहित है और इसी कारण मनोहर भी है। यह आनन्द प्राय कवि के काव्य रचना की कुशलता तथा अनूठी उक्ति को जानकर उत्पन्न हुआ करता है। रस ही काव्य की आत्मा है, कहा है "वाक्य रसात्मक काव्य" जिस रस के विषय मे हम कह रहे है वह किस२ सामग्री के सयोग से उत्पन्न होता है अब उसी का वर्णन करते है। रस का प्रादुर्भाव (विकाश) तभी होता है, जब विभाव अनुभाव और सचारीभाव की सहायता से स्थायीभाव परिपक्व दशा पर पहुचता है—

विभावैरनु भावेश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभि ।
आनीयमान. स्वाद्यत्व स्थायीभावोरस स्मृत. ॥

इनमे विभाव (कारण) अनुभाव (कार्य) और सचारी भाव (सहायक) हे और जिसमे रस की स्थिति रहती है वह स्थायीभाव है। विभाव के दो भेद है एक आलबन और दूसरा उद्दीपन। अभी यह लक्षण सर्वसाधारण को सुगम बोध नहीं अतएव एक उदाहरण द्वारा इसका स्पष्टीकरण कहते है।

वाणासुर की कन्या उषा स्वप्न मे अनिरुद्ध को देखकर प्रेमासक्त होगई इस कथा प्रसग मे उषा और अनिरुद्ध आलम्बन हुए, सखी, उद्यान, चन्द्रमा, चादनी, आदि ऐसे पदार्थ है जिनसे वह प्रेम भडक उठता है ये पदार्थ उद्दीपन हुए इन्ही आलम्बन और उद्दीपन कारणो से वह प्रेम उत्पन्न हुवा इन्हीं कारणो का नाम (विभाव) है; जो प्रेम उत्पन्न हुवा उसका नाम रति (अत्यन्त प्रीति) यही रस का मूलरूप हे और यही (स्थायीभाव) है प्रेम के कारण उसके कार्य कटाक्ष अग विक्षेपादि दिखाई देने लगे इन्हीं से उस प्रेम या रति की प्रतीति हुई इन कार्यो का नाम है (अनुभाव) अब उस रति की पुष्टता स्मृति, चिंता, उत्कठा आदि के द्वारा पूर्ण हुई इन पुष्ट कारक वस्तुओ का नाम है (सचारी व्यभिचारी

वा सहकारी) इन्हीं कारणो कार्यों और सहायको से रति (स्थायीभाव स्पष्टतया प्रतीत होने लगा और रस कहलाने के योग्य हुआ, यह शृंगाररस है ऐसेही समस्त रसो के विभाव अनुभाव, सचारी और स्थायीभाव अलग २ है जो आगे लिखे जावेगे ।

काव्य और नाटक मे कोई ८ व कोई ६ रस मानते हैं यथा—

(८) शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र वीर भयानकाः ।
वीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥

(९) शृंगार वीर वीभत्स रौद्र हास्य भयानका ।
करुणाद्भुत शातांश्च नवनाट्या रसास्मृताः ॥

किसीने एक और वात्सल्य रस मानकर १० भेद कहे है—

(१०) शृंगार वीर करुणाद्भुत हास्य भयानका ।
वीभत्स रौद्रौ वात्सल्य शातश्चेति रसादश ॥

रस यथार्थ मे नवही है दृश्य काव्य मे शातरस उपयुक्त नहीं माना गया अतएव ८ ही भेद माने है। श्रव्य काव्य मे शातरस उपयुक्त है अतएव ९ भेद माने है। वात्सल्य तो प्रेम और दया की प्रधानता के कारण शृंगार और करुण का ही अग प्रतीत होता है। पुत्रादिको के प्रति जो स्नेहभाव है सो वत्सल कहाता है जैसे-पुत्रवत्सल, भक्तवत्सल, शरणागत वत्सल इत्यादि। कोई भक्तिरस अलग मानते है परन्तु वह भी शांतरस के अन्तर्गत है नाटकादि मे सख्य और दास और प्रेयान् तीन रस और पाये जाते है परन्तु वे भी शातरसातर्गत प्रतीत होते है हा प्रेयान् कभीर भावानुसार शृगार और करुण रस मे भी वर्णित होता है विचार पूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि शृगार रस से हास्य की, रौद्र से करुण की, वीर से अदभुत की और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति है शातरस पृथक् है। इन पाचो रसो के संक्षिप्त उदाहरण शातरस के पश्चात् देखिये।

अब यहां नवो प्रधान रसों का संक्षिप्त वर्णन स्थायीभाव सहित नीचे लिखा जाता है—

| | नाम | संक्षिप्त व्याख्या | स्थायीभाव |
|---|---|---|---|
| १ | शृंगार | स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम। इसके दो भेद हैं १ संयोग (सम्भोग), २ वियोग (विप्रलंभ) | रति |
| २ | हास्य | बिगड़े हुए आकार वचन चेष्टा आदि | हास |
| ३ | करुणा | इष्ट नाश, जिसमें हृदय द्रवित हो या दया उत्पन्न हो | शोक |
| ४ | रौद्र | शत्रु पर क्रोध | क्रोध |
| ५ | वीर | महोत्साह | उत्साह |
| ६ | भयानक | जिससे डर पैदा हो | भय |
| ७ | बीभत्स | दुर्गंध रुधिर आदि घृणा उत्पन्न करने वाले पदार्थ | जुगुप्सा (ग्लानि) |
| ८ | अद्भुत | विस्मय ( आश्चर्य ) उत्पन्न करने वाले पदार्थ | विस्मय |
| ९ | शांत | शम, निर्वेद (वैराग्य) | शम |

पहिले कह चुके हैं कि काव्य-रस में अलौकिक आनन्द है तो इसमें यह प्रश्न हो सकता है कि शोक बीभत्स भयानक रसों से क्या आनन्द होता है तो इसका सम्यक् उत्तर यही हो सकता है कि इसमें सहृदय समझने वालों का अनुभव देख लीजिये इन रसों में यदि दुःख होता तो कोई उसके निकट जाने की इच्छा भी न करता यहां लौकिक शोक, हर्ष का प्रसंग ही नहीं, काव्य में तो अलौकिक भावों से सुख ही उत्पन्न होता है करुणा रसके श्रवण में तो अश्रुपात तक होता है क्योंकि इसके प्रभाव से चित्त पिघल उठता है जैसे हरिश्चन्द्र नाटकादि तथापि वारम्वार उसके देखने वा सुनने की इच्छा बनी रहती है यही इस बात का पूराप्रमाण है सारांश यह कि काव्य रस में आनन्दही आनन्द है इसलिये कहा है 'रस्यन्ते इति रसा'। अब नीचे लिखी सारिणी में इन समस्त रसों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

| स्थायीभाव | विभाव (कारण) | | अनुभाव (कार्य) | सञ्चारीभाव (व्यभिचारी) | देवता | वर्ण |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | आलम्बन | उद्दीपन | | | | |
| २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ |
| रति | नायक नायिका | सखी, सखा, चन्द्र चन्द्रिका, भ्रमर, वन वाग झंकार आदि | भ्रू विक्षेप हाव भाव कटाक्ष आदि | स्वप्न औत्सुक्य शंका, चिंता, लज्जा, उन्मादि-कादि | विष्णु | श्याम |
| हास | कुरूप वेष जिसे देख हँसी आवे | हास्यजनक व्यक्ति की चेष्टा आदि | विलक्षण प्रकार से हँसना मुस्कराना आँख सिकोड़ना मटकना आदि | हर्ष आलस्य चपलतादि | प्रमथ | श्वेत |
| शोक | शोच्य वस्तु | शोच्य की दाहादि क्रिया | रोना देवनिंदा दीर्घ श्वास वैराग्य आदि | मोह, विषाद, जड़ता, आदि | वरुण | धवल |
| क्रोध | शत्रु | शत्रु की चेष्टा | भ्रूभंग, होंठ चबाना, नेत्रों का लाल होना, कंप आदि | गर्व उग्रता मोह आक्षेप मुष्टिप्रहार आदि | रुद्र | लाल |
| उत्साह | जिसके जीतने की इच्छा हो | शत्रु की चेष्टा | सहाय ढूँढना आदि | धैर्य, अंगस्फुरण, नेत्रों की लालिमा, मति गर्व, तर्क, रोमांच आदि | इन्द्र | गौर |

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ६ भयानक | भय | भयंकर दर्शन | भयजनक वस्तु की चेष्टा | घबराहट, कंप, बेहोशी आदि | त्रास, दीनता, गद्गद भाषण आदि | यम | श्याम |
| ७ बीभत्स | जुगुप्सा (ग्लानि) | रक्त, मांस, अस्थि, मल, मूत्रादि | दुर्गंध आदि | थूकना, मुँह नाक मूंदना रोमांच आदि | मोह, व्याधि, आवेग, आदि | महाकाल | नील |
| ८ अद्भुत | विस्मय | आश्चर्यकारी वस्तु | आश्चर्यकारी गुण वा कर्म | स्तम्भ, पसीना, रोमांच भ्रम, नेत्र विकाश आदि | तर्क, वितर्क, मोह, हर्ष आदि | गंधर्व | पीत |
| ९ शांत | शम | परमात्मा का स्वरूप संसार की निःसारता | तीर्थ सेवा सत्संग आदि | रोमांच आदि | धृति, मति, निर्वेद, हर्ष भूतदया आदि | नारायण | शुक्ल |

पहला भाग समाप्त

# रसादि के लक्षण।

(१) विभाव—कारण रस के आहिं जे, ते विभाव अवदात।
आलंबन उद्दीपनहु दोय भेद विख्यात॥
(आलंबन) रस को हो अवलंब जहँ, आलंबन है सोय।
(उद्दीपन) उद्दीपनहिं विलोकिकैं, रस उद्दीपित होय॥

(२) अनुभाव—कार्यरूप अनुभाव तें, रस को अनुभव होत।

(३) संचारीभाव-सहकारी सब रसन कैं, संचारिन के गोत॥

(४) स्थायीभाव—रसकी थिरता जाहि में, थायिभाव उद्योतें।
सो विभाव अनुभाव पुनि, संचारी मिलि होत॥
थायिभाव रति हास पुनि, शोक क्रोध उत्साह।
भय ग्लानिहु विस्मय बहुरि, निर्वेदहिं चित चाह॥

(५) रस—रस कहिये नव भाति के, प्रथम कहत शृंगार।
हास्य करुण पुनि रौद्र गनि, वीर सुचारि प्रकार॥
बहुरि भयानक जानिये, पुनि वीभत्स बखान।
अद्भुत अष्टम नवम पुनि, शांतरसहि उर आन॥

प्रत्येक रस के आलम्बन, उद्दीपनादि अलग२ होते हैं जैसे पहिले सारिणी में लिख आये हैं।

---

१ मनोविकारों के मूल कारणों को विभाव कहते हैं साहित्य दर्पण में विभाव का लक्षण यों है।

रत्याद्युद्बोधका लोके विभावा काव्यनाट्ययो
आलंबनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ॥

विभाव शब्द का अर्थ है विशेषभाव, परिचय।

## आलंबन विभाव (कारण)

जाको थायिभाव रति, सो शृंगार सुहोत।
मिलि विभाव अनुभाव पुनि, संचारिन के गोत ॥
रति कहियतु जो मन लगनि, प्रीति अपर पर जाय।
थायी भाव शृंगार के, भल भाषत कविराय ॥
परिपूरण थिरभाव रति, सो शृंगार रस जान।
रसिकन को प्यारो सदा, कविजन कियो बखान ॥
आलंबन शृंगार के, तिय नायक निरधार।
उद्दीपन सब सखि सखा, बन बागादि विहार ॥
हाव भाव मुसक्यानि मृदु, इमि औरहु जु विनोद।
है अनुभाव शृंगार नव, कवि मन कहत समोद ॥
उन्मादिक सञ्चरत तहँ, संचारी है भाव।
कृष्ण देवता श्याम रँग, सो शृँगार रसराव ॥
सो शृंगार द्वै भाँति को, दम्पति मिलन सँयोग।
अटक जहां कछु मिलन की, सो शृँगार वियोग ॥

भावार्थ स्पष्ट है। जैसे शरीर के सब अंगों मे शिर, ऋतुओ में वसन्त, तैसेही सब रसो मे शृंगाररस प्रधान है जिसके देवता अलंकार प्रिय श्री विष्णु भगवान अर्थात् रसिक शिरोमणि वृन्दावन विहारी श्रीकृष्णचन्द्र हैं इसी से शृंगाररस की गणना सब से आदि मे की है कविवर श्री पद्माकर भट्ट कहते हैं—

नव रस में शृंगार रस, सिरे कहत सब कोय।
सुरस नायिका नायकहिं, आलंबित है होय ॥

शृंगाररस ही मे नायिका भेद ओत प्रोत भरा हुआ है। कतिपय विद्वान नायिका भेद को क्रूर दृष्टि से देखते हैं यह उनकी भूल है क्या संस्कृत और क्या प्राकृत काव्य ग्रन्थो मे नायिका भेद ही का प्राधान्य है। नायिका भेद केवल वाग्विलास है इससे मनुष्य सावधान होकर सभाचतुर होता है यह बात अवश्य ध्यान रखने योग्य है कि जहां तक

सरस वाग्व्यापार है वहां तक नायिका भेद है। व्यभिचार में प्रवृत्त होने का नाम कदापि नायिका भेद नहीं है। नायिका भेद का ज्ञाता होकर मनुष्य अनेक बुराइयों से बचकर सावधान और कार्य कुशल हो जाता है हा कथन में कोई बात मर्यादा के बाहिर न होनी चाहिये, अश्लीलता से अवश्य बचना चाहिये क्योंकि वह नीरस होने के अतिरिक्त सभ्य समाज में कभी सम्मादन नहीं हो सकती है हमारे प्राचीन शास्त्रकार परम विद्वान और दूरदर्शी थे हम लोगों के लिये वे जो एक से एक बढ़कर काव्यरत्न छोड़ गये हैं उनसे हम को अवश्य लाभान्वित होना चाहिये।

## (१) शृंगार रस।

### (सम्भोग) संयोग शृंगार

पिय प्यारी को मिलन जहँ, सो संयोग शृंगार।
सोहत ललना लाल सँग, चक चकई अनुहार॥ यथा—

दोऊ जन दोऊ को अनूप रूप निरखत पावत कहूं न छबिसागर को छोर हैं। चिंतामनि केलि के कलानि के विलासनि सों दोऊ जन दोउन के चित्तन के चोर हैं॥ दोऊ जने मंद मुसकानि सुधा बरसनि दोऊ जने छके मोद मद दुहू ओर हैं। सीताजू के नैन रामचन्द्र के चकोर रामचन्द्र नैन सीता मुखचन्द्र के चकोर हैं॥

कूर्यो गृह काज लोक लाज मनमोहनी को भूल्यो मन मोहन को मुरली बजाइबो। देखो दिन द्वै में रस खान बात फैलि जैहे सजनी कहा लौ चन्द हाथन दुराइबो॥ कालह कालिन्दी तीर चितयो अचानक ह्यौ दोउन को दोऊ मुरि मृदु मुसकाइबो। दोऊ परें पैंया दोऊ लेत हैं बलैया उन्हें भूलि गई गैया इन्हें गागर उठाइबो॥

तिय पिय के पिय तीय के, नख सिख साजि सिंगार।
करि बदलो तन मनहु को, दम्पति करत विहार॥
प्रिय मुख शशि में नयन चकोरा।
एक बार चुनि कुसुम सुहाये, निज कर भूषण राम बनाये।

## वियोग (विप्रलम्भ) शृंगार।

जहँ बिछुरत तिय पीय सों, है वियोग शृंगार।
हरि के बिछुरे राधिका, तजे सकल शृंगार॥ यथा—

शुभ शीतल मंद सुगंध समीर कछू छल छन्द से छ्वै गये हैं।
पदमाकर चांदनी चंदहू के कछु औरहि डोरन च्वै गये हैं।
मन मोहन सो बिछुरे इतही बनि के न अबै दिन द्वै गये हैं।
सखि वे हम वे तुम वेई बने पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं॥
ऐसी न देखी सुनी सजनी घनी बाढ़त जात वियोग की बाधा।
त्यों पदमाकर मोहन को तब तें कल है न कहूं पल आधा॥
लाल गुलाल घला घल मे दृग ठोकर दै गई रूप अगाधा।
कै गई कै गई चेटकसी मन लै गई लै गई लै गई राधा॥

अटकि रहे कित? कामरत, नागर नन्दकिशोर।
करहु कहा पीकन लगें, पिक पापी चहुँ ओर॥

## त्रिविध वियोग।

त्रिविध वियोग शृंगार वह, इक पूरव अनुराग।
वरणत मान प्रवास पुनि, निरखि नेह की लाग॥

## पूर्वानुराग।

हो आतुरता मिलन की, सो पूरव अनुराग।
मनमोहन मिलिहैं जबहिं, अलि तबहीं बड़ भाग॥

मोहि तजि मोहनै मिल्यो है मन मेरो दौरि नैनहू मिले हैं देखि देखि
[गो]परो शरीर। कहै पदमाकर त्यों तानमय कान भये हौं तो रही जकि
के भूली सी भ्रमी सी वीर॥ ये तो निरदई दई इनको दया न दई ऐसी
[दश]ा भई मेरी कैसो धरो तन धीर। हो तो मनहू के मन नैनन के नैन
[ह्वै]पैं कानन के कान तोपै जान तो पराई पीर॥

जैसी छबि श्याम की पगी है तेरी आखिन मे ऐसी छबि तेरी
[श्य]ाम आखिन पगी रहै। कहै पदमाकर ज्यों तान मे पगी है त्योंही तेरी
[मुस]कानि कान्ह प्राण मे पगी रहै॥ धीर धर धीर धर कीरति किशोरी

नई लगन इतै उतै बराबर लगी रहै। जैसी रट तोहि लागी माधवै की राधे एसी राधे राधे राधे रट माधवै लगी रहै ॥

ज्यों ज्यों बरसन घोर घन, घन घमण्ड गरुवाइ।
त्यों त्यों परति प्रचण्ड अति, नई लगन की लाइ॥

तु० रा०—सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
गोतम तिय गति सुरति करि, नहि परसति पद पानि।
मन बिहँसे रघुबंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि॥

## (१) श्रवण दर्शन।

दर्शन श्रवण जु सुनत स्तुति, उपजै चित अनुराग।
अलि अस हरि सों मिलत जे, तिन तिय के बड़ भाग॥

राधिकासों कहि आई जु तू सखि साँवरे की मृदु मूरति जैसी।
तासिन तें पदमाकर ताहि सुहात कछू न बिसूरति वैसी॥
मानहु नीर भरी घन की घटा ओखिन म रही आनि उनैसी।
ऐसी भई सुनि कान्ह कथा जु निलोकहिगी तब होइगी कैसी॥

## (२) चित्र दर्शन।

दर्शन चित्र जु चित्र लखि, मन में होत निहाल।
चित्र देखि जकि थकि रही, सन्मुख कौन हवाल॥ यथा—

चित्र के मंदिर तें इक सुन्दरि त्यों निकसे जिन्हें नेह नसा है।
त्यों पदमाकर खोलि रही दृग बोले न बोल अडोल दसा है॥
भृंगी प्रसंगते भृंगहि होत जुपै जग में जड़ कीट महा है।
मोहन मीत को चित्र लखे भई चित्रहिसी तो विचित्र कहा है॥

हरषि उठी फिर फिर परखि, फिर परसति चरन जाय।
मित्र चित्र पट को तिया, उर सों लेत लगाय॥

## (३) स्वप्न दर्शन।

दर्शन स्वप्न जु स्वप्न में, लखि उपजति है प्रीति।
सोवतहू हरि जात मन, यह कैसी अलि रीति॥ यथा—

सुन्दरि सपने में लख्यो, निशि में नंदकिशोर।

### (४) प्रत्यक्ष दर्शन।

सो दरशन प्रत्यक्ष जब, लखिकै उपजति प्रीति।
पाय दरश नँद नन्द को, हिय हुलसी रस रीति॥ यथा-

आई भलेही चली सखियोंन मे पाई गोविंद के रूप की झांकी।
त्यो पद्माकर हार दियो गृह काज कहा अरु लाज कहा की॥
है नयनैं सिख लों मृदु माधुरि बांकी ये भौंह बिलोकनि बाकी।
आजु की या छवि देखि भटू अब देखिबे को न रह्यो कछु बाकी॥

हौं लखि आई लखहुँगी, लखैं न क्यों ब्रज लोग।
निसिदिन सांचहुँ सांवरो, दुगुन देखिबे जोग॥

## मान।

कछि पिय को अपराध कछु, प्रिया ठानती मान।
पिय दृग लाली लखि तिया, तानति भौंह कमान॥

इसके तीन भेद हैं लघुमान; जो प्रिय वचनही से शांत हो मध्यममान, जो विनय व शपथादि से शांत हो और गुरुमान जो स्तुति भूषण प्रदान द्वारा बड़ी कठिनाई से निवृत्त हो।

### लघुमान

वाही के रँगी है रंग वाही के पगी है मन वाही के लगी है लग आनँद अगाधा को। कहै पदमाकर न चाहै तजैं नेकु दृग तारन तें न्यारो कियो पक पल आधा को॥ ताहू पै गोपाल कछु ऐसो ख्याल खेलत हैं मान मोरिबे को देखिबेकी कर साधा को। काहू पै चलाय चख प्रथम खिझावें फेरि बांसुरी बजाइके रिझाइ लेत राधा को॥

### मध्यममान

वेमही की थोरी पै न भोरी है किसोरी यह याकी चित चाह राह और की मैंझैयो जिन। कहै पदमाकर सुजान रसखान आगे आन बान आनकी सुआन के लगैयो जिन॥ जैसे अब तैसे साधि मोहनि मनाइ लाई तुम इक मेरी बात एती बिसरैयो जिन। आजु की घरी तें जैसे भूलिहू भले हो श्याम ललिता को लेके नाम बांसुरी बजैयो जिन॥

### गुरुमान

नीके के अनैसी पुनि जैसी होइ तैसी तऊ यौवन की मूरतें न दूरि भागियतु है। कहै पदमाकर उजागर गोविंद जोपै चूकिगे कहू तो इतो

र रागियतु है॥ प्रेमरस हाय लै जगाये लै हिये सो हित पाइलै
ौरि चलु प्रेम पागियतु है। परी मृगनैनी तेरी पाइ लगि वेनी पाइ पाइ
गे तेरे फेर पाइ लागियतु है॥

निरखि नेह नीको वनो, या कहि नंदकुमार।
सुभुज मेलि मेल्यो गरे, गज मोतिन को हार॥

## प्रवास।

(भूत)

सो प्रवास दुख भोगनीं, जिनके पिया विदेस।
कहा कीजिये हे अली, हरि पठयो न सँदेस॥

(भविष्य)

समाचार तिहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय।
जाय सासु पग कमल जुग, बदि बैठि शिर नाय॥

## विरह की दशा।

अभिलाषा चिंता बहुरि, सुमिरण गुण को गान।
पुनि उद्वेग प्रलाप गनि, अरु उन्माद बखान॥
व्याधि और जडता मरण, विरह दसा दस आहिं।
कोउ कोउ मूर्छाहू कहत, सो संचारी माहिं॥

विरह की दस दशाएं हैं १ अभिलाषा, २ चिंता, ३ स्मरण,
गुणकथन, ५ उद्वेग, ६ प्रलाप, ७ उन्माद, ८ व्याधि, ९ जडता,
० मरण। कोई२ मूर्छा भी मानते हैं, इनमें से चिंता, स्मरण, उन्माद,
याधि, जडता, मूर्छा और मरण की व्याख्या सञ्चारी में वर्णित है तथापि
मगानुसार यहां भी उनका संक्षिप्त वर्णन करते हैं—

(१) अभिलाषा

जहां परस्पर मिलन की, अभिलाषा मन माहिं।
मनमोहन के दरस को, ये नैना ललचाहिं॥

ऐसी मति होति, अब ऐसी करोआली यस्याली के लियार को

जहाज तजि डारबोई करिये॥ घरी घरी पल पल छिन छिन रैन दिन नैनन की आरती उतारबोई करिये। इतुतें अधिक अरविंद त अधिक ऐसो आनन गोविंद को निहारबोई करिये॥

### (२) चिंता

चिंता कोनेहु भांति की, जत्र चित जाय समाय।
ह्वै है कैसे विपिन में, सीय सहित दोउ भाय॥

ये विधि जो विरहागि के बान सो मारत हो तौ यहै वर मागों।
जो पशु होउं तऊ मरि कैसहु पावरि ह्वै प्रभु क पग लागो॥
दास पगेरुन मे करो मोर जु नन्द किशोर प्रभा अनुरागो।
भूषन कीजिय तौ वन मालहि जातें गोपालहि के हिय लागो॥
कवहु नयन मम शीतल ताता। होइहहि निरखि श्याम मृदु गाता॥

### (३) स्मरण 'स्मृति)

जहॅ वियोग में पीव को, सुमिरन हो मन माहिं।
मुरलीधर विमरत नहीं, लखि वंसीवट छाहिं॥ यथा—

यो दुख दे ब्रजवासिन को, ब्रज को तजि के मथुरा सुख पैहैं।
वे रस केलि विलासनि को, वन कुंजन की बतिया बिसरैहैं॥
जोग सिखावन को हम को, बहुर्यो तुम मे उठि धावन पैहैं।
ऊधो नहीं हम जानततीं, मन मोहन कूबरि हाथ बिकैहैं॥
सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजो वहै, वा जमुना के तीर॥
तात शक्रसुत कथा सुनायहु। बाण प्रताप प्रभुहिं समझायहु॥

### (४) गुण कथन

जहां विरह में कीजिये, पिय गुण गणनि बखान।
मनमोहन के गुणनि पर, वारिय तन मन प्रान॥

खंजन हैं मन रंजन केशव रंजन नैन किधौं मति जीकी।
मोठी सुधा की सुधाधर की दुति दंतन की किधौं दाड़िमहीकी॥
चंद भलो मुखचंद किधौं सखि सूरति काम की कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज के पद पंकज प्रान पियारे की मूरति पीकी॥

## (५) उद्वेग

उद्वेगहि में विरह तें, चित्त बहुत अकुलाय।
मो तजि कुबरी साथ क्यों, नेह लगायो जाय॥

छन होत हरीरी मही को लखे छन जोवति है छन जोति छटा।
अवलोकति इन्द्र वधू की पत्यारी विलोकति है खिन कारी घटा॥
ताकि डार कदम्बन की तरसैं तऊ देखत नाचत मोर अटा।
अन ऊरध आवत जात भया चित नागरि को नट कैसो वटा॥

## (६) प्रलाप

है प्रलाप अटपट वचन, विरह दशा के बीच।
कहा करत यह विरह जो, होत मुठी में मीच॥

श्याम को कहत अमिली है अमिली को श्याम आकही अनारन आकिरो करति है। कहै पद्माकर तमालन को ताल कहै ताजनि ताल कहि ताकिया करति है॥ कान्हे कान्ह काहू कहि कदली कदवनि भट परि रमन मे छाकियो करति है। सावरे सो राजरे यों विरह मार्नो वाल, वन वन वावरी लो ताकिनो करति है॥

ना यह नद को मंदिर है वृषभानु को भौन जहाँ जकती हो।
हौही यहा तुमहीं कवि देव जु कौन को घूघट के तकती हो॥
भेंटत मोहिं भटू केहि कारन कौन कीधौं छबिसो छकती हो।
ऐसी भई हो कहो किहि कारन कान्ह कहा है कहा वकती हो॥

## (७) उन्माद

व्यर्थ वचन, रोदन हँसी, सो उन्माद बखान।
छिन रोवत छिन हँसि उठत, छिन अनमिल बतरान॥

धारि के यह आज अकेली गई खरिके हरि के गुण रूप लुटी।
उनहू अपनो पहिराय हरा मुसकाय के गाइ के गाय दुही॥

## (८) व्याधि

व्याधि विरह तें होत जब, तन महँ अति संताप।
सुनत भावती की व्यथा, तुम्हें आइहै ताप॥

विरह सँतापन तें तपनि हेरानो चित ऊवि ऊवि सासैं लेति नैन नीर भरि भरि। कर्पूर धूरन तें चंदन के चूरन तें तामरस भरनि उपाय थाकीं करि करि॥ वैरि रहीं घर की नगर की डगर ग्राई देखि देखि भाखै सबै त्राहि त्राहि हरि हरि। अंग अंग सूके बैन मूके मे वधू के उर भभकि भभूके मैनजू के उठें बरि बरि॥

## (९) जड़ता

जहँ वियोग दुख तें तियहिं, सुधि न रहत कछु देह।
चित्र लिखी सी ठगि रही, मनमोहन के नेह॥

कौल से पानि कपोल धरे दृग द्वार लौं नीर भरे हिय हारे।
चित्र चरित्रमई सी भई गई लीन ह्वै दीन टरे नहिं टारे॥
रावरी लागी 'समारख' दीठि न जात कही हम जाति पुकारे।
जागिहै जीहै तो जीहै सबै न तु पीहैं हलाहल नंद के द्वारे॥

## (१०) मरण

मरण विरह में सुजस हित, कविजन करत बखान।
रामचन्द्र बिछुरत तजे, नृप दशरथ ने प्रान॥

सँगवारी सुनो सब कानन दै, विरहागि के हो तो मरी सुख में।
करि चेटक चंदन चंदन रीति, निहारियो भावते के रुख में॥
सुधि लेहिंगे 'सेवक' जातहि मेरी पठाइ है आवन की दुख में।
तजि आगि सुधा गुनि पीतम की, धरि दीजियो पाती मेरे मुख मे॥

## (११) मूर्छा

जहाँ मूर्छा में रहत, सुख दुख को कछु भान।
बाल विरह व्याकुल परी, तजनि चहत अब प्रान॥

## नायिका।

रम्य नायिका पेखि, उपजे भाव सिंगार रस।
रीझि रहे हरि देखि, तिय तन छबि सुकुमारता॥

भा०–जिस सुंदर स्त्री को देखतेही हृदय में शृंगार रस का आविर्भाव हो उस रूपवती युवतीकोही नायिका कहते हैं। यथा—नायिका के तन की छवि और सुकुमारता देखकर हरि मोहित हो गये। यथा—

सुवर सुरंग नैन सोभित अनंग रँग अंग अंग फैलत तरंग परिमल के। वारन के भार सुकुमार की लचत लंक राजै परजंक पर भीतर महल के॥ कहैं पद्माकर बिलोकि जन रीझैं जाहि अंबर अमल के सकल जल थल के। कोमल कमल के गुलाबन के दल के सुजात गड़ि पायन बिछौना मखमल के॥

सवैया–जाहिरै जागतसी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पद्माकर हीर के हारन गंग तरंगन को सुख देनी॥
पायन के रँग सो रँगि जातिसी भांतिही भांति सरस्वति सेनी।
पैरे जहाँ जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी॥

जासु की दीपति दीपतें सौगुनी दामिनी कुन्दन केसरि भाइका।
काम की खानि सदा मृदु बानि सनेह छकी छितिमें छबि छाइका॥
अंग अनूपम को बरनै सब अंगन प्रीतम को सुखदाइका।
मानो रची छवि मूरति मोहनी श्रीधर ऐसी बखानत नाइका॥

सहज सहेलिन सों जु तिय, बिहँसि बिहँसि बतरात।
सरद चंद की चाँदनी, मंद परत सी जात॥

## वर्णानुसार नायिका भेद।

दिव्य अदिव्य कहैं सुकवि, दिव्यादिव्य विचारि।
त्रिविध नायिका जगत में, ग्रन्थन बद्ध निहारि॥
दिव्य देवतिय वर्णिये, नारि अदिव्य बखान।

भा०–वर्णानुसार नायिका तीन प्रकार की है १ दिव्य, २ अदिव्य और ३ दिव्याऽदिव्य।

दिव्य–देवतिय, अदिव्य–नरतिय (सामारिक), दिव्याऽदिव्य–ससार में जन्मी हुई देवतिय, यथा—सीता, पार्वती, राधिकादि।

## जात्यनुसार नायिका भेद।

पद्मिनि चित्रिनि शंखिनी, अरु हस्तिनी बखानि।
त्रिविध नायिका भेद में, चारि जाति तिय जानि॥

भा०–जात्यनुसार इनके चार भेद हैं अर्थात् पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी और हस्तिनी, इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

पद्मिनी–अलप रोप रति सुन्दरी, पद्मिनि तन सुकुमार।
तिय के बस में पिय भये, करि राख्यो हिय हार॥ यथा–

सोनो और सुगन्ध है, बाल सलोने गात।
जापैं पिय चख भौंरलो, सदा रहत मँडरात॥

चित्रिनी–नृत्यगान पिय चित्र रुचि, जाकहँ चित्रिनि सोय।
पिया चित्र लखि तिय रही, चन्द्र चकोरी होय॥ यथा–

मित्र नाहिं चितवत कहीं, चित्र रहो चितलाइ।
पत्री हेरति है कोऊ, पत्री, सन्मुख पाइ॥

संखिनी–कृश तन लघु कुच निलज त्यों, संखिनि रहत सरोप।
नैन तनैन कर तिया, बोली लखि पिय दोप॥ यथा–

नखन हियो लखि लाल को, यह मन होत संदेह।
नखन खोदि चाहत कियो, लालन के हिय गेह॥

हस्तिनी–देह लोम युत थूल बहु, हस्तिनि की गज चाल।
तिय सन्मुख पिय रहत ज्यों, पर्‍यो पींजरे लाल॥

## अन्य भेद।

इन नायिकाओं के प्रकृति के अनुसार तीन भेद हैं १ उत्तमा, २ मध्यमा और ३ अधमा तथा स्वभावानुसार भी तीन भेद हैं १ अन्य-

सुरतदु:खिता, २ मानवती और ३ वक्रोक्तिगर्विता और धर्मानुसार भी तीन भेद हैं-१ स्वकीया, २ परकीया और ३ सामान्या (गणिका) स्वकीया के भी अवस्था अर्थात् वयानुसार तीन भेद हैं १ मुग्धा, २ मध्या और ३ प्रौढा तथा दशा के अनुसार मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या इन प्रत्येक के दस दस भेद हैं—

१ प्रोषितपतिका, २ खंडिता, ३ कलहांतरिता, ४ विप्रलब्धा, ५ उत्कंठिता, ६ वासकसज्जा, ७ स्वाधीनपतिका, ८ अभिसारिका, ९ प्रवत्स्यतपतिका और १० आगतपतिका। इन समस्त भेदों का क्रमानुसार वर्णन किया जाता है—

### उत्तमा

स्वापय दोष लखि उत्तमा, धरै न मन में रोष।
सुखी रहौ कितहूं रहौ, पिया हमें सन्तोष॥ यथा

भा०—निज पति के दोष देख और सुनकर भी जो नायिका मन में रोष (क्रोध) न लावे अर्थात् पिय के अहित करने पर भी सदा हित करनेवाली स्त्री को उत्तमा कहते हैं। जैसे—हे प्यारे आप जहां रहो तहां सुख से रहो, आपके सुखी रहनेही में हमें परम संतोष है।

जो मथुरा हरि जाय बसे हमरे जिय प्रीति बनी रहि सोऊ।
ऊधो वड़ो सुख पाहि हमे अति नीकी रहै वग मूरति दोऊ॥
मेरेही नाम की छाप पड़ी अरु अन्तर बीच कहूं नहि कोऊ।
राधिका कृष्ण रटै तो कहैं पर कूवरी कृष्ण कहै नहिं कोऊ॥

### मध्यमा

पिया दोष लखि मध्यमा, करै मान सन्मान।
सन्मुख लखि नँद नन्द कहँ, बरजि मंद मुसकान॥

भा०—पिय के गुनाह (दोष) देखकर मान सन्मान (हिताहित) करनेवाली स्त्री को मध्यमा कहते हैं। यथा—नन्द नन्दन को सामने देखकर आने मे मना किया और तत्पश्चात् मंद मंद मुसकराने लगी।

### अधमा

पिय ज्यौं ज्यौं कर नेह, अधमा त्यौं त्यौं रिस करै।
तीय कराति तउ तेह, पीय परत पायन जऊ॥

भा०—ज्योंही ज्यों पिय (स्नेहपूर्वक) हित करता है, त्योंही त्यों अधिक रोष (क्रोध) अर्थात् अहित करनेवाली स्त्री को अधमा कहते हैं। दुष्टा और कर्कशाभी इसी को कहते हैं। यथा—पिय ज्यों२ पांय पड़ता है तिय त्यों२ अधिकाधिक कुपित होती है।

हौं उरझाइ रिझायबे को रस रान कवित्तन की धुनि छाई।
त्यों पदमाकर साहस के कबहूं न विषाद की बात सुनाई॥
स्वप्नहु में न कियो अपराध सुआपने हाथन सेज बिछाई।
प्यो परि पाइ मनाइ जऊ तऊ पापिन को कछु पीर न आई॥

### अन्य सुरत दुःखिता

अन्य सुरत दुखिता दुखित, लखि तिय तन रति अंक।
मो हित तन बहु छत सहे, नाहिन तोहि कलंक।

अन्य स्त्री के तन पर निज प्रीतम के रति चिन्ह देखकर स्त्री अपना दु:ख प्रगट करे उसे अन्य सुरत दु:खिता या अन्य सम्भोग दु:खिता कहते हैं। यद्यपि यह लक्षण प्रौढ़ा में भी सम्भव है तथापि कविजन इसका कथन बहुधा परकीया में करते हैं। यथा—हे सखी तूने मेरे लिये तन में बहुत घाव सहे हैं सो तुझ को कोई कलंक नहीं है अभिप्राय यह है कि तू महा कलंकिनी है। यथा—

बोलति न काहे परी पूछे बिन बोलों कहा, पूछति हौं कहा भई स्वेद अधिकाई है। कहैं पदमाकर सुमारग के गये आये साची कहु मोसों आज कहा गई आई है॥ गई आई हौं तो पास सांवरे के, कौन काज? तेरे लिये ल्यावन सु तेरिये दुहाई है। काहे त न लाई फिरि मोहन विहारी जू को, कैसे वाहि ल्याऊ? जैसे वाको मन ल्याई है॥

दूती पर उपकारणी, को जग में सम तोर।
अति सुकुमार शरीर में, सहे जु छत हित मोर॥

मानवती।

पिय सों करै जु मान तिय, वहै माननी जान।
पांव परत हू पीय तिय, तानति भौंह कमान॥

भा०–पिय के अपराध सूचनार्थ पिय प्रति मान करनेवाली स्त्री मानवती कहते हैं। यथा—प्रीतम के पांव पड़ने पर भी नायिका भौंह कमान तानती है।

त्यार तजै भोग्हु तजै, भूषन अमल अमोल।
तजत कहो न सुहाग में, अजन तिलक तमोल॥

वक्रोक्तिगर्विता।

वह वक्रोकति गर्विता, त्रिविध कहत रसधाम।
प्रेम रूप गुण गर्विता, क्रम तें इनके नाम॥

भा०–प्रिय के प्रेम का वा निज स्वरूप का जो स्त्री अभिमान र्व) करे उसे वक्रोक्तिगर्विता कहते हैं। इसके दो भेद हैं १ प्रेमगर्विता रूपगर्विता। किसीर ने एक तीसरा भेद गुणगर्विता भी कहा है।

प्रेमगर्विता।

करे प्रेम को गर्व जो, प्रेमगर्विता मान।
दुख इतनो सखि मम पिया, देत न मइके जान॥

भा०–पिय के प्रेम का जो स्त्री गर्व करे वही प्रेमगर्विता है। यथा सखी मुझ को दुख केवल इतना है कि मेरे पिया मुझ को मइके नहीं जाने देते। पुनर्यथा—

मो बिन माइ न खाइ कछू पदमाकर त्यों भई भामी अचेत है।
बीरन आये लिवायबे को तिनकी मृदु बानिहु मानिन लेत है॥
प्रीतम को समुझावत क्यों नहिं हे सखि तू जुपे राखति हेत है।
और तो मोहिं सबै सुखरी दुखरी यहै माइके जान न देत है॥

रूपगर्विता।

रूप गर्विता होत वह, रूप गर्व को धारि।
मो मुख चंदा सम कहत, अजब इहा की नारि॥

भा०–निज स्वरूप का गर्व करनेवाली स्त्री रूपगर्विता कहलाती है।

## गुणगर्विता।

ताहि कहत गुणगर्विता, होहि गर्व गुण जाहि।
मो गूंथो गजरा सखी, पहिरत पिया सराहि॥

भा०—जिस नायिका को अपने गुण का गर्व हो, उसे गुणगर्विता कहते हैं। यथा—हे सखी मेरे प्रीतम प्यारे मेरी गुही हुई फूलों की माला की सराहना करके धारण करते हैं।

## स्वकीया।

धन्य स्वकीया नायिका, निज पति ही सों प्रेम।
पति परमेश्वर मानि के, तिय सेवति मह नेम॥

भा०—जो स्त्री मन वच काय ( अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा ) से अपनेही पति के प्रेम मे लीन हो और स्वभावही से लज्जा तथा शीलवती हो उसे स्वकीया वा स्वीया नायिका कहते हैं। यथा—नायिका अपने पति को परमेश्वर ही मानकर नियमपूर्वक उसकी सेवा करती है। इसके अवस्थानुसार मुग्धा, मध्या, प्रौढा तीन भेद हैं जो क्रमश आगे लिखेंगे।

शोभित स्वकीयागनगुन गिनती में तहां तेरे नामही की एक रेखा रेखियतु है। कहै पदमाकर पगी यो पति प्रेमही में पदुमिनि तोसी तिया तूही पेखियतु है॥ सुवरन रूप जैसो तैसो सील सौरभ है, याही तें तिहारो तन धन्य लेखियतु है। सोने में सुगन्ध न सुगन्ध मे सुन्योरी सोनो, सोनो औ सुगन्ध तोमें दोनो देखियतु है॥

सो हित सुन्दर देवन की तसवीर लिखी मणि मन्दिर माहीं।
कौतुक हेत सहेत सबै सो करी निज पीतम तो चित चाहीं॥
जानि परी न कछू हमको मनि पाई अटू तें कहा किहि पाहीं।
देखी अनोखी नई नवला यह काहे तें चित्र विलोकत नाहीं॥ यथा—

पति देवता सु तीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
खान पान पीछू करति, सोवति पिछले छोर।
प्रान पियारे तें प्रथम, जगत भावती भोर॥

प्रीतम के प्रेमानुसार स्वकीया के दो भेद हैं १ जेष्ठा, २ कनिष्ठा।

वरणत जेष्ठ कनिष्ठका, जहँ व्याही तिय दोय।
पिय प्यारी जेठा कही, अनप्यारी लघु सोय॥

भा०-जहा दो स्त्रिया विवाहित हों उनमें से जो पिय की विशेष प्यारी हो वही जेष्ठा अर्थात् "जिसे पिया चाहे वही सुहागिन" और अनप्यारी को कनिष्ठा कहते है। जहा अधिक स्त्रिया विवाहित हो उनमें भी सब से अधिक प्यार वाली जेष्ठा और शेष कनिष्ठा जानना चाहिये। यथा—

जल विहारि पिय प्यारि को, देखति क्यों न सहेलि।
लै डुबकी तजि एक तिय, करत एक सों केलि॥

अवस्था अर्थात् वयक्रमानुसार स्वकीया के तीन भेद हैं १ २ मध्या, ३ प्रौढा।

एक स्वकीया की कही, कविन अवस्था तीन।
मुग्धा इक मध्या बहुरि, पुनि प्रौढ़ा परवीन॥

मुग्धा के अँग अंग, झलकत आवे तरुणई।
तन अनग रस रंग, नित नूतन प्रगटन लगे॥

भा०-जिसके शरीर के अग प्रत्यग मे नवयौवनाकुर निकलते आवें उसे मुग्धा कहते हैं इसे काम चेष्टा नहीं रहती। यथा—नायिका के तन में नित नवीन अनग रसरग प्रगट होने लगे हैं। यथा—

कछु गज गति के आहटनि, छिन छिन छीजत मेर।
विधु विकास विकसत कमल, कछू दिनन के फेर॥
पल पल पर पलटन लगे, जाके अग अनूप।
ऐसी इक ब्रज बाल को, को कहि सकत सरूप॥
यह अनुमानि प्रमाणियत, तिय तन जोबन जोति।
ज्यों मेहदी के पात में, अलख ललाई होति॥

मुग्धा के दो भेद हैं।

मुग्धा द्विविधि बखानहीं, प्रथम कही अज्ञात।
ज्ञात यौवना दूसरी, भाषत मति अवदात॥

## अज्ञात यौवना।

सो अजान जोवन तिया, जोवन जिहिं न जनाय।
ढीलि परति क्यों घांघरी, आंगी तन न समाय॥

भा०—जिसे अपना यौवनागमन न जान पड़े उसे अज्ञात यौवना कहते हैं। यथा—हे सखी दिन दिन घांघरी क्यों ढीली पड़ती जाती है और अंगिया क्यों कड़ी होने लगी?

लाल तिहारे संग में, खेलो खेल बलाय।
मूंदत मेरे नैन हो, करन कपूर लगाय॥

## ज्ञात यौवना।

ज्ञात यौवना जानहीं, यौवन आगम अङ्ग।
दिना द्वैकतें बाल क्यों, लखन लगी निज अङ्ग॥

भा०—जिसे यौवन का आगमन स्वयं जान पड़े सो ज्ञात यौवना है। यथा—नायिका दो एक दिन से अपने अंग को बार बार क्यों देखने लगी है?

ये वृषभानु किशोरी बड़े इत हां वह नन्द किशोर कहावै।
त्यौं पदमाकर दोउन पै नवरंग तरंग अनंग की छावै॥
दोरैं दुहू दुरि देखिये को रुचि देह दुहू की दुहून को भावै।
ह्यां इनके रस भीने बड़े दृग ह्यां उनके मसि भींजत आवै॥

इतै उतै सकुचत चितै, चलत डुलावति बांह।
दीठ बचाय सखीन की, छिनक निहारति छांह॥

ज्ञात यौवना के दो भेद हैं १ नवोढा, २ विश्रब्ध नवोढा।

## नवोढा।

नहिं नवोढा रति चहै, अति लज्जा भय पाय।
निरखतही सखि सिर मुकुट, लगी धाय गरजाय॥

भा०—अधिक भय तथा अधिक लाजवश जो नायिका रति न चाहै उस मुग्धा को नवोढा कहते हैं। यथा—सखी के सिर पर मुकुट देखतेही हरि समझकर नायिका धाय के गलेमें जाकर लिपट गई। यथा-

राजि रही उलही छवि सो दुलही दुरि देखतही फुलवारी।
त्यों पद्माकर बोले हँसे हुलसे बिलसे मुखचन्द उज्यारी॥
ऐसे समै कछु चातक की धुनि कान परी डरपी वह प्यारी।
चौंकि चली चमकी चितमे चुप ह्वै रही चंचल अंचलवारी॥

## विश्रब्ध नवोढा।

सो विश्रब्ध नवोढ जिहि, हो कछु रति परतीत।
दूर गये पिय लालसा, निकट भये भय भीति॥

भा०–थोड़ाभी विश्वास तथा अनुराग पति पर होनेवाली मुग्धा को विश्रब्ध नवोढा कहते है। यथा–प्रीतम के दूर होने पर तो नायिका के मन मे निकट जाने की लालसा बलवती होती है पर समीप जाने पर भयभीत होती है।

## मध्या।

मध्या तन में गजहीं, लज्जा मदन समान।
कहन चहति कहि नहिं सकति, लगति सखी के कान॥

भा०–लज्जा और मदन जिस स्त्री मे समान होता है उसे मध्या कहते हैं। यथा—नायिका कुछ कहना चाहती हैं परन्तु सखी के कान मे लगतेही कुछ नहीं कह सकती। पुनर्यथा—

देखे बनै न देखवो, अनदेखे अकुलाहि।
इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरज्योही नाहि॥
मदन लाज बस तिय नयन, देखत बनत इकंत।
ऐंचे खिंचे इत उत फिरत, जिमि दुनारि के कंत॥

## मान के समय मध्या के तीन भेद।

मान समय मध्याहि के, तीन भेद पुनि जान।
धीरा और अधीर गनि, धीराऽधीरा मान॥

भा०–मान के समय में मध्या तीन प्रकार की होती हैं १ धीरा, २ अधीरा और ३ धीराऽधीरा।

मध्याधीरा।

मध्याधीरा व्यंग्य रिस, तजै न पति सनमान।
स्वारथ परमारथ करत, हौ पिय नीति निधान॥

भा०–अन्य रतिसूचक चिन्ह देख धैर्य तथा मानपूर्वक सादर व्यंग्य वचनों से क्रोध जनानेवाली स्त्री को मध्या धीरा कहते हैं। यथा—हे पिय तुम यथार्थ में नीतिनिधान हो क्योंकि स्वार्थ परमार्थ दोनो साधते हो।

स्वारथ मे रत हैं सबही परमारथ साधत नाहिं न कोऊ।
हैं परमारथ मे रत लोग गुलाब कहै तिन्हैं जस जोऊ॥
जो परमारथ स्वारथ हीन सु आलस लोभित कौगति खोऊ।
हो तुम नीति निधान लला परमारथ स्वारथ साधत दोऊ॥
भाल पै लाल गुलाल गुलाल सो गोरि गरे गजरा अल बेलौ।
यों बनि बानिक सों पदमाकर आये जु खेलन फाग तो खेलो॥
पै इक या छवि देखिवे के लिये मो बिनती कै न झोरिन झेलो।
रावरे रंग रँगी अँखियान मे ए बलबीर अबीर न मेलो॥

मध्या अधीरा।

मध्य अधीरा रोस करि, करति अनादर कंत।
जाव पिया जहँ निशि जगे, कस भूले ही अंत॥

भा०–अन्य रति सूचक चिन्ह देखकर अधीरता सहित प्रत्यक्ष कोप तथा प्रीतम का अनादर करने वाली स्त्री को मध्याऽधीरा (मध्या अधीरा) कहते हैं। यथा—हे पिया वही जावो जहा रात भर जगे हो। यहां दूसरी जगह कहां भूल पड़े हो।

भूले से भ्रमे से काहे सोचत श्रमे से अकुलाने से चिकाने से ठगे से ठीक ठाये हो। कहैं पदमाकर सुगोरे रंग बोरे दृग, थोरे थोरे अजब कुसुम्भी करि लाये हो॥ आगे को धरत पर पीछे को परत पग, भोरही ते आज कछु औरै छबि छाये हो। कहा आये? तेरे धाम कौन काम? घर जानि सहो जाउ कहां? जहा मन धरि आये हो॥

मध्या धीराऽधीरा।

मध्या धीरा धीर मृदु, भाषि रोय सह रोप।
भाग लिख्यो हम भोगतीं, पिया तुम्है नहिं दोप॥

भा०–अन्य रति सूचक चिन्ह देख गुप्त तथा प्रगट (अर्थात् उभयत) रोदन सहित कोप प्रकाश करनेवाली मृदुभाषिणी स्त्री को

मध्या धीरा अधीरा कहते हैं। यथा—हे पिया तुम्हारा कुछ दोष नहीं हम अपने भाग्य का लिखा हुआ दुःख भोग रही हैं। पुनर्यथा—

~ग यति कहा हौ पिन का कहत वन्त फर्गी रोम भज रोस कियो मे का अचाहे को। कहैं पद्माकर यहै तो दुख दूरि करौ दोस कछू है तुम्हैं नेह निरबाहे को॥ नींवैं इत रोवति कहा हौ कहौ कौन धा मेरेहू जु आगे किये आंसुन उमाहे को। कोहो मैं तिहारी? तू तो मे प्रानप्यारी अजू होती जो पियारी तब रोती कहो काहे को॥

आजु कहा नजि बैठी हो? भूषण, पेमेहि अग अछू अरसीले।
बोलति बोल रुखाई जिये मति राम सनेह सुनेतें सुसीले॥
क्यों न कहौ दुख प्रान प्रिया? असुवानि रहे भरि नैन लजीले।
कौन तिन्हैं दुख है, जिनके, तुम से मन भावन छैल छबीले॥

करि आदर तिय पीय कौ, देखि दृगन अलसानि।
सुमुख मोर बरसा लगी, कै उसास अँसुवानि॥

## प्रौढ़ा।

प्रौढ़ा लज्जा ललित कछु, सकल केलि की खानि।
तिय इकन्त में कन्त कहँ, अङ्क भरति मनमानि॥

भा०–किंचित लाज तथा मदन पूरित और सम्पूर्ण काम कलाओं में प्रवीणा स्त्री को प्रौढ़ा प्रगल्भा और समस्त रस कोविदा कहते हैं। यथा—नायिका कन्त का एकान्त मे पाकर इच्छापूर्वक अंक में भरती है। पुनर्यथा—

तुम नाम लिवावति हौ हम पै हम नाम कहौं कह जीजियेजू।
अब नाव चले सिगरे जल मैं थल मे न चले कह कीजियेजू॥
कवि सचिंत औसर जो अकती राखती नहिं छापर कीजियेजू।
हम तो अपनो बर पूजती है सपनेहु न पीपर पूजियेजू॥

तिय तन लाज मनोज की, यों अब दशा दिखाति।
ज्यों हिमत ऋतु मे सदा, घटत बढ़त दिन राति॥

## प्रौढ़ा भेद कथन।

प्रौढ़ा द्विविध बखानहीं, रति प्रीता इक वाम।

सुचितै सुचित ह्वै कै गनित निकारो तो॥ ठाकुर कहत यह प्रेम की परिच्छा छान इच्छा को प्रमान भलीभांति निरधारो तो। मेरो मन मोहन तें लागत है वार वार मोहन को मोंत मन लागि है विचारो तो॥

गोप सुता कहै गोरि गुसाइनि, पांय परौं विनती सुनि लीजे।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर, नेसुक चित्त दया रस भीजे॥
देहि जौ ब्याहि उछाह सों मोहनै, मात पिताहु के सो मन कीजे।
सुन्दर सांवरो नन्दकुमार, बसै उर जो वर सो वर दीजे॥

सू०-ऊढा और अनूढा के दो दो भेद और माने गये हैं जो स्वेच्छा पूर्वक उपपति से प्रेम करे उस परकीया को उद्बुद्धा और जो उपपति की चतुराई मे लगकर प्रीति करे उस परकीया को उद्बोधिता कहते हैं।

## परकीया विभेद।

पुनि परकीया के कहैं, षट विध भेद बखान।
प्रथमहि गुप्ता जानिये, बहुरि विदग्धा मान॥
ललित लक्षिता तीसरी, चौथी कुलटा होइ।
पञ्चई मुदिता षष्ठई, है अनुशयना सोइ॥

परकीया के छ भेद हैं अर्थात् १ गुप्ता, २ विदग्धा, ३ लक्षिता, ४ कुलटा, ५ मुदिता और ६ अनुशयना।

## गुप्ता।

गुप्ता रति गोपन करै, त्रिविध कहत समुझाय॥

भा०-पर पुरुषानुराग सम्बन्धी क्रिया को छिपाने वाली स्त्री को "गुप्ता" कहते हैं इसके तीन अवान्तर भेद हैं १ भूतसुरतसंगोपना, २ वर्तमानरति गोपना, ३ भविष्यरति गोपना।

## भूतसुरत संगोपना।

भूतसुरत संगोपना, प्रथम भेद यह आइ।
फटिगो चीर करीर फँसि, लगे कंट तन घाइ॥

भा०-बीती हुई रति को छिपाने वाली नायिका भूत सुरति संगोपना कहलाती है। यथा—देखो सखी करील मे उलझकर मेरे चीर फट गये हैं और शरीर मे कांटों के घाव लग गये हैं। यथा—

छुटत कम्प नहि रैन दिन, विविन विदारनि काय।
अति शीतल हेमत की, अरी जरी यह वाय॥

### वर्तमान सुरत सगोपना।

वर्तमान रति गोपना, भेद दूसरो जान।
बहि जाती मैं सरित में, जा न गहत हरि आन॥

भा०—वर्तमान रति छिपाने वाली नायिका को वर्तमान सुरति सगोपना कहते हैं। यथा—यदि हरि आकर मुझे न पकडते तो मैं निश्चय इस नदी में बह जाती। पुनर्यथा—

जोर जगी जमुना जल धार में धाय धसी जल केलि की माती।
त्यों पद्माकर पैग चलै उछलै जल तुग तरंग विधाती॥
टूटे हरा छरा छूटे सबै सरबोर भई अँगिया रँगराती।
को कह तो यह मेरी दशा गहता न गुविंद तौ मैं बहि जाती॥

चढत घाट बिचल्यो सुपग, भरी आन इन अक।
ताहि कहा तुम तकि रही, यामे कौन कलक॥

### भविष्य सुरति सगोपना।

है भविष्य रति गोपना, लक्षण नाम प्रमान।
पुष्प लेन को जाय बन, शुक चोंथत अधरान॥

भा०—भावी सुरति गोपन करने वाली नायिका को भविष्य सुरत गोपना कहते हैं। यथा—पुष्प लेने के लिये वन को कौन जाये वहां तो शुक मेरे अधरों में क्षत कर देता है अर्थात् अधर चोंथ खाता है। पुनर्यथा—

कोऊ कछु अब काहुवै, मत लगाइयो दोप।
होन लगो ब्रज गलिन मे हुरि हारन को घोप॥

### विदग्धा वर्णन।

द्विविध विदग्धा जानिये, वचन विदग्धा एक।
क्रिया विदग्धा दूसरी, भनत सुकवि सविवेक॥

भा०—पर पुरुषानुराग सम्बन्धी कार्य को चतुराईपूर्वक साधन

## वचन विदग्धा।

वचन विदग्धा साधती, वचन रचन सों काज।
रैन अँधेरी सून घर, दई सहायक आज॥

भा०—वचन चातुरी से परपुरुषानुराग सम्बन्धी कार्य को साधन करनेवाली नायिका को वचन विदग्धा कहते हैं। यथा—रात अँधेरी है और घर सूना है आज हमारा रामही रक्षक है। यथा—

कल करील की कुंज में, रह्यो अरुझि मो चीर।
ये बलवीर अहीर के, हरत क्यो न यह पीर॥

## क्रिया विदग्धा।

क्रिया विदग्धा साधती, चतुर क्रिया करि काज।
केश मांग छ्वै सैन किय, अर्ध निशा मिलु आज॥

भा०—परपुरुषानुराग (प्रीति) सम्बन्धी कार्य क्रिया चातुरी द्वारा साधन करनेवाली नायिका को क्रिया विदग्धा कहते हैं। यथा—नायिका ने केश और मांग छूकर यह संकेत किया कि प्यारे आज आधीरात को मिलना। इसी को बोधक क्रिया भी कहते हैं।

## लक्षिता।

निरखि लक्षिता आन रत, करै प्रगट तिय आन।
कहा छिपावति री लग्यो, अंजन हरि अधरान॥

भा०—जिस नायिका का परपुरुष सम्बन्धी प्रेम कुछ चिन्हों से दूसरी स्त्री जानकर प्रगट कर देवे उस नायिका को लक्षिता कहते हैं। यथा०—अरी सखी हमसे क्या छिपाती है तेरी प्रीति प्रगट करने के लिये तो स्वयं हरि के अधरों में अंजन लगा है।

## कुलटा।

कुलटा कुल बोरनि करै, बहु लोगन सों प्रेम।
फरै सरस जन दुमन तें, हे विधि कर अस नेम॥

भा०—जार (व्यभिचारी) पुरुषों के विलासादिक से भी असन्तुष्ट स्त्री को कुलटा कहते हैं (अर्थात् अनेक पुरुषों से रति चाहने

वाली स्त्री ही कुलटा है ) यथा—हे विधना ऐसा नियम करिये कि वृक्षों मे रसीले जन फरने लगें जिससे हमारी मनोकामना पूर्ण होवे। पुनर्यथा—

जानि सुजान मे प्रीति करी सहिके बहु भातिन लोग हँसाई।
त्यो हरिचन्दजू जो जो कह्यो सो कर्यो चुप ह्वै करि कोटि उपाई॥
सोऊ नहीं निरही उनसों उन तोरत बार कछू न लगाई।
साची भई कहनावतिया अरी ऊची दुकान की फीकी मिठाई।

## अनुशयाना।

अनुशयनहिं सङ्केत के, विघटन तें सुख हानि।
वर्तमान भावी बहुरि, भूत तीन विधि जानि॥

भा०–सकेत नष्ट होने के कारण दुःखित स्त्री को अनुशयाना कहते हैं इनके तीन भेद हैं। वर्तमान (सकेत विघट्टना) २ भावी (सकेत नष्टा) ३ भूत ( रमण गमना )

## प्रथम अनुशयाना सकेत विघट्टना।

पहिली अनुशयना दुखित, लखत नष्ट सकेत।
ननदी लगत वसंत के भइ दूबरि किहिं हेत॥

भा०–वर्तमान सकेत स्थल को नष्ट होते हुए देख दुखित होने-वाली नायिका को प्रथम अनुशयाना कहते हैं। यथा वसत के लगतेहीं ननँद क्यो दुबली पडती जाती है। यहा वसन्त में पतझड़ होकर सकेत स्थान नष्ट होना व्यजित होता है पुनर्यथा—

सौति सँजोग न रोग कछु, नहिं वियोग बलवन्त।
ननँद होत क्यों दूबरी, लागत ललित वसन्त॥

## (२) अनुशयाना भावी संकेत नष्टा।

दूजी अनुशयना विकल, भावि सहेट अभाव।
ससुरेहू बहु वाटिका, दुलहिन जनि पछिताव॥

सखी की उक्ति है दुलहिन तुम किसी बात का शोच न करो तुम्हारे ससुरे मे भी बहुतसी फुलवारिया हैं ।

निघटन फूल गुलाब के, धरति क्यौं न मनधीर ।
श्रमल कमल फूलन लगे, विमल सरोवर नीर ॥

(३) अनुशयाना रमण गमना ।

व्याकुल अनुशयना तृतिय, रमन गमन अनुमान ।
चौंकि, चकी, उझकी, झकी, सुनि बंशी धुनि कान ॥

भा०—रति सकेत मे प्रीतम का गमन अनुमानकर वहा न पहुँच सकने के कारण व्याकुल (दुखित) होनेवाली स्त्री को तीसरी अनुशयाना तथा रमण गमना कहते हैं । यथा—बशी की ध्वनि सुनकर नायिका चकित हो चमक उठी और कपित होकर इधर उधर देखने लगी । यहा बन्शी ध्वनि से नायक का पहिले पहुँच जाना व्यजित हुवा ।

मुदिता ।

मुदिता मुदित जु होय प्रिय, बात बात सुनि देखि ।
कन्त गमन हरि आगमन, देखि प्रसन्न विशेखि ॥

भा०—स्वेच्छापूर्वक सानुकूल वार्ता वा समय देख सुनकर जो स्त्री मुदित (प्रसन्न) हो उसे मुदिता कहते हैं । यथा—कन्त को अन्यत्र जाते हुए और हरि को निज गृह आते हुए देखकर नायिका अत्यन्त प्रसन्न हुई । यथा—

परखि प्रेम बस पर पुरुष, हरषि रही मनि मैन ।
तब लगि झुकि आई घटा, अधिक अँधेरी रैन ॥

सामान्या (गणिका)

सामान्या धन लोभतें, करै जनन सों प्रेम ।
आज हार प्रिय देहु कल, लैयो बिंदिया हेम ॥

भा०—केवल धनार्थही प्रेम करनेवाली स्त्री को गणिका कहते हैं यथा—हे प्यारे आज तो यह हार दे दीजिये और कल सोने की बिंदिया लेते आना ।

तन सुबरन सुबरन बसन, सुबरन उकति उछाह ।
धनि सुबरन मे ह्वे रही, सुबरन ही की चाह ॥

सू०-परकीया और गणिका की प्रौढ़ अवस्था काही कविजन वर्णन करते हैं।

## नायिका के दश भेद।

प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहान्तरिता होइ।
विप्रलब्ध उत्कंठिता, वासक सज्जा जोइ॥
स्वाधिन पतिका हू कहत, अभिसारिका बखानि।
प्रगट प्रवत्स्यत् प्रेयसी, आगत पतिका जानि॥

मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या में ये दसों भेद पद्यातर्गत भावानुसार निश्चित कर लिये जाते हैं। यथा—मुग्धा, प्रोषित पतिका, मध्या प्रोषितपतिका, प्रौढ़ा प्रोषितपतिका, परकीया प्रोषित पतिका, सामान्या प्रोषितपतिका इत्यादि। "रसकुसुमाकर" में सामान्या में ये दस भेद नहीं कहे हैं परन्तु अन्य कवियों ने इनका वर्णन किया है।

### (१) प्रोषितपतिका।

प्रोषितपतिका सोइ, पिय विदेश सों दुखित जो।
निशिदिन काटत रोइ, पिय अबलौं बहुरे नहीं॥

भा०—प्रीतम के विदेश गमन से विरह सतापित स्त्रीको प्रोषित पतिका कहते हैं। यथा—पिय अब तक परदेश से नहीं आये ऐसा सोच कर नायिका रातदिन रोया करती है। यथा—

निसिहिं ससिहि निंदहि बहुभाँती। जुग सम भई सिरात न राती॥

### (२) खंडिता।

दुखित खंडिता पीय तन, लखि पर तिय रति अङ्क।
को बड भागिनि पिय रँगी, लाली नैननि वङ्क॥

भा०—अन्य स्त्री सम्भोग सूचक असाधारण चिन्ह सहित नायक के प्रभात आगमन से क्रोधित होनेवाली स्त्री को खंडिता कहते हैं। यथा—प्रात समय घर में नायक को आया हुआ देखकर नायिका कहती है हे प्रिय किस बड़भागिनी ने तुम्हारे बाके नेत्रों को लाल रग से

(३) कलहांतरिता।

कलहांतरिता कलह करि, पिय सों पुनि पछिताय।
रसन नयन अजगुत नहीं, कर हटक्यो पिय हाय॥

भा०–प्रीतम का स्वय अपमान कर पीछे मे पश्चात्ताप (पछताने) वाली स्त्री को कलहांतरिता कहते हैं। यथा–नायिका कहती है हे रसना और नयना तुम दोनोने पिया से कलह कराया सो कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि तुम्हारा नामही है रसना अर्थात् रस नहीं और नयना अर्थात् नीति नहीं। परन्तु कर अर्थात् प्रीति करानेवाला जो हाथ है उसने पिय को हटक दिया। हाय यह बडा अनुचित हुआ।

रसना, मति इन नयना निज गुण लीन।
कर तें पिय झिझिकारे अजगुति कीन॥

(४) विप्रलब्धा।

विप्रलब्ध अकुलाय, पिय विहीन संकेत लखि।
कहां गयो पिय हाय, सेज फूल अब शूल सम॥

भा०–रति संकेत मे पीतम को न देखकर व्याकुल होनेवाली स्त्री को विप्रलब्धा कहते है। यथा—संकेत स्थान मे नायक को न पाकर नायिका कहती है हा प्राणनाथ तुम कहा चले गये यह सेज के फूल अब मुझे शूल के सदृश लगते है।

(५) उत्कंठिता।

उत्का सोच सहेट में, क्यों आयो नहिं कंत।
रात जात सिय रात सब, पिय बिलमे कहँ अंत॥

भा०–जो स्त्री रतिस्थल मे आकर प्रीतम के आने मे विलम्ब देख चिंतित होती है उसे उत्कंठिता अथवा उत्का कहते है। यथा—सब रात बीती जाती है न जाने पिया दूसरी जगह कहा विलम रहे है।

(६) वासकसज्जा।

वासकसज्जा सेज सज, पीय मिलन के काज।
सजी सेज पिय मिलन हित, सांझहितें तिय आज॥

भा०–निश्चयही प्रीतम का मिलाप जानकर संभोग सामग्री सज्जित (अर्थात् तैयार) करनेवाली स्त्री को वासकसज्जा कहते हैं। यथा—पिय मिलाप के लिये नायिका ने आज साझही से सेज सजा रक्खी है।

## (७) स्वाधीनपतिका।

स्वाधिनपतिका के रहत, पिया सदा आधीन।
पिय आपुहि अन्हवाय तिय, सकल सिंगारहु कीन॥

भा०–जिस स्त्री का पति सदाही उसके वशीभूत रहे उसे स्वाधीनपतिका कहते हैं। यथा—नायिका को नायक ने स्वय अपने हाथो से स्नान कराया और सोलहो शृगार भी किये अर्थात् नायक नायिका के सब प्रकार आधीन है।

## (८) अभिसारिका।

अभिसारिक बुलवै पियहि, कै आपुहि चलि जाय।
करि सिंगार भूपण पहिरि, तिया चली हरषाय॥

भा०–पिय संभोगार्थ संकेत रतिस्थानमे स्वय जानेवाली अथवा प्रीतम को बुलानेवाली स्त्री को अभिसारिका कहते हैं। यथा—नायक से मिलने के लिये नायिका शृगार कर और आभूषण पहिन हर्षित होती हुई चली जा रही है। इसके तीन भेद है। दिन म जानेवाली दिवाभिसारिका, अंधेरी रात में जाने वाली कृष्णाभिसारिका और चादनी रात में जानेवाली शुक्लाभिसारिका।

## (९) प्रवत्स्यत्पतिका।

प्रवसित पतिका सोइ, चलन चहत परदेश पिय।
रही विकल हिय होइ, भोरहिं तें पिय गमन लखि॥

भा०प्रीतम का विदेश जाना निश्चय होने से व्याकुल होनेवाली स्त्री को प्रवत्स्यत्पतिका कहते हैं। यथा—आज पिय विदेश जायेंगे इस कारण प्रात काल ही से नायिका विकल हो रही है। यथा—

## (१०) आगतपतिका।

आगतपतिका मुदित बहु, बहुरत पिय परदेस।
सुनि आगम पिय तरकिगे, बन्द ; कंचुकी वेस॥

भा०-प्रीतम के विदेशागमन से आनंदित होनेवाली नायिका को आगतपतिका कहते हैं। यथा—पिय का आगमन सुनकर हिय में इतनी प्रसन्न हुई कि मारे उमंग के कंचुकी के बंद तड़क गये।



## अथ नायिका नायकवयस वर्णन।

अमुक वर्ष तक अमुक नायिका होती है इस वात का निर्धारण करना महा कठिन है कोई वार्षिक नियम स्थिर करना प्रकृति देवी के प्रतिकूल चलना है अगो के चिन्ह तथा स्वभावानुसार तो अवस्था पलटतीही जाती है यही प्राकृतिक नियम अचल है देशभेद तथा प्रकृत्यनुसार कवियो के अनेक मतभेद है इनमे से कोई सर्वानुकूल नहीं तथापि स्थूलमान से पूर्व कथित कुछ भेद इस अभिप्राय से लिखे जाते है कि जिससे काव्य मे व्यवहृत अनेक शब्दो का भाव विदित होजावे। शृगार प्रकरण म केवल युवती और युवक का ही वर्णन होता है नायिका कब तक युवती कहाती है इस विषय मे एक प्रमाण यह है—

विशाखातागतामेधा, प्रसूतांतंच यौवनम्।
प्रणामातः सताकोपो, याचनातंहि गौरवम्॥

अर्थात् प्रसूत तक ही नायिका का यौवन है। अन्य स्थान मे वयस का प्रमाण यो है—

अष्ट वर्षा भवेत् गौरी, नव वर्षातु रोहिणी।
दशमें कन्यका प्रोक्ता, अत. ऊर्द्ध रजस्वला॥

दूसरे कवि यो लिखते हैं—

सात वरस लौं जानिये, कन्या को परमान।
तेरह लौं गौरी बहुरि, बालाबैस निदान॥
तरुणी है तेईस लौं, प्रौढ़ा पुनि चालीस।
इह विधि तिय वय को कहत, जे कहात कवि ईश॥

अन्य कवि का कथन यो है—

साढ़े दसयें वर्ष लौं, गौरी वयस प्रमान।
पुनि साढे चौबीस लौं, लच्मी वयस सुजान॥
बहुरि वर्ष पैतीस लौं, बैस सरस्वति जान।

साढ़े दशयें वर्ष तें, मुग्धापन दरसाय ।
पुनि सोलहवें वर्ष लौं, रहै सुनौ कविराय ॥
बहुरि सोरहें वर्ष तें, मध्यापन लागि जाय ।
रहै बीसये वर्ष लौं, कहैं सकल कविराय ॥
फेर बीसयें वर्ष तें, प्रौढ़ा होय सुजान ।
साढ़े चौविस लौं रहै, कह चिरजीव महान ॥
(इन महाशय की जांच परताल चमत्कारिक है)

एक और कवि महाशय ने निम्नांकित नाम कहे हैं —

रजो दर्शन से तीन महीने तक अंकुरित योवना, ६ महीने तक नवलवधू, १४ वर्ष मे नवयौवना, १५ मे नवल अनंगा, १६ मे सलज्जा वा श्यामा, १६ मे प्रगल्भा, २० मे सुरत विचित्रा, २१ मे प्रौढा, २२ में रतिकोविदा, २३ मे वल्लभा, और २४॥ मे सुभर्मा (गृहिणी)

साराश यह है कि स्थूलमान से ११ से १५ तक मुग्धा, १६ से २३ तक मध्या और २४ से ४० तक प्रौढा कहाती है ।

नायकों के वर्णन मे भी युवक का ही वर्णन होता है इनके वय-भेद श्रृंगार रस के ग्रन्थो मे नहीं दिये गये न इनकी आवश्यका है हां पुरुष के वयभेद ग्रन्थो में इस प्रकार मिलते हैं —

| वर्ष | अवस्था | वर्ष | अवस्था |
|---|---|---|---|
| १-३ | शिशु | १७-४० | तरुण |
| ३-५ | कुमार | ४०-७० | मध्य |
| ५-१० | पागंड | ७०-६० | वृद्ध |
| १०-१५ | किशोर | ६०-१०० | जरा |
| १६ | बाल | | |

## नायिका भेदों का संक्षिप्त विवरण ।

वर्णानुसार ३—दिव्य (देवतिय), अदिव्य (नरतिय), दिव्यादिव्य (ससार मे जन्मी हुई देवतिय)
जात्यनुसार ४—पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी, हस्तिनी ।
प्रकृत्यनुसार ३—उत्तमा, मध्यमा, अधमा,

प्रेमानुसार २–जेष्ठा, कनिष्ठा।

धर्मानुसार ३–स्वकीया, परकीया, सामान्या।

स्वभावानुसार ३–अन्य सुरत दु खिता, मानवती, गर्विता।

गर्विता ३ प्रकार–प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, गुणगर्विता।

स्वकीया की अवस्था अर्थात् वयक्रमानुसार ३ भेद–मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा।

मुग्धा के २ भेद–अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना।

मध्या और प्रौढ़ा के मानानुसार ३ भेद–धीरा, अधीरा, धीराऽधीरा।

प्रौढ़ा के क्रियानुसार २ भेद–रतिप्रीता, आनन्द सम्मोहिता।

परकीया (ऊढा १, अनूढा २) इनके छै छै भेद–गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना, मुदिता।

सामान्या–गणिका जिसे वेश्या, वारवधू, वारांगना, रामजनी, रंडी इत्यादि कहते हैं इसके भेदापभेद सारहीन जानकर छोड़ दिये गये।

दशानुसार नायिका भेद १०–मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और सामान्या इन प्रत्येक के दस दस भेद हैं–प्रोषितपतिका १, खण्डिता २ कलहांतरिता ३, विप्रलब्धा ४, उत्कंठिता ५, वासकसज्जा ६, स्वाधीनपतिका ७, अभिसारिका ८, प्रवत्स्यतपतिका ९, और आगतपतिका १०।

## नायक

नायक गुण मंदिर सुवा, युवती रीझहिं देख।
ललकि रहीं व्रजनायिका, निरखि श्याम को भेख॥

भा०–सुन्दर गुण रूप यौवन सम्पन्न युवा जिसको स्त्रियां शृंगार दृष्टि से देखें और जो काव्य राग, रस का वेत्ता (ज्ञाता) हो उसे नायक कहते हैं। यथा–श्रीकृष्णचन्द्र के स्वरूप को देखकर व्रज की नायिकायें ललचाय रहीं अर्थात् मोहित होगईं। पुनर्यथा–

हेरे को न रिझाविं, रसिक रूप अभिराम।

## द्विविध नायक।

द्वै विध के नायक कहे, कविजन सहित विचार।
मानी होत स्वभाव सों, प्रोषित दशानुसार॥

भा०—नायक के स्वभाव (प्रकृति) अनुसार तथा दशानुसार दो भेद हैं, अर्थात् प्रकृति अनुसार (मानी) और दशानुसार (प्रोषित)

### मानी।

करै जु तिय पै मान पिय, मानी कहिये सोय।
रूस रहे पिय पूस में, करत न ऐसो कोय॥

भा०—प्रिया प्रति। मान करनेवाले पुरुष को मानी नायक कहते हैं। यथा—हे पिय पूस में क्यों रूस रहे हो ऐसा तो कोईभी नहीं करता। पुनर्यथा—

जगत जुराफा ह्वै जियत, तज्यो तेज निज भान।
रूस रहे तुम पूस में, यह धौं कोन सयान॥

### प्रोषितपति।

सो पति प्रोषित जानिये, विकल विरह तें होय।
कबधौं कंठ लगाइबौ, प्यारी को मुख जोय॥

भा०—प्रिया के वियोग होने से सतापित नायक को प्रोषितपति कहते हैं। यथा—हा वह सुन्दर अवसर न जाने कब प्राप्त होगा जब अपनी प्राणप्यारी का मुख देखकर उसको कंठ से लगाऊंगा। पुनर्यथा—

लोकन सँवारो तो सँवारो ना विचारो कछू लोकन सवारि नर नारि ना सँवारो तो। कीन्हो नर नारि तो ना प्रेम को प्रचार देतो प्रेम को प्रचारो तो ना मन को प्रचार तो॥ मन को प्रचारो तो प्रचारो ना सँयोग देतो कीन्हो जो सयोग तो वियोगना विचार तो। नन्दराम कीन्हो जो वियोग विधना तो भूलि बोरे बन बागन वसन्त ना बगार तो॥

ए करतार विनै सुनो दास की लोकनि को अवतार करो जनि।
लोकन को अवतार करो तो मनुष्यन को तो सँचार करो जनि॥
मानुष हू को सँचार करो तो तिन्हैं चित्त प्रेम प्रचार करो जनि।
प्रेम प्रचार करो तो दयानिधि केहु वियोग विचार करो जनि॥

# नायक भेद।

धर्मानुसार नायक के तीन भेद हैं अर्थात् नायक तीन प्रकार के हैं पति, उपपति, वैशिक।

## पति।

जो बिधि सों व्याहौ तियहिं, सोई पति सब ठौर।
जब तें घर आई प्रिया, लाल लखत नहिं और॥

भा०–जो नायक रीत्यनुसार 'नायिका' के साथ पाणि ग्रहण करता है, उसे पति कहते हैं। यथा—जब से लाल प्रिया को विवाह कर घर लाये हैं, तब से अन्य की ओर देखते भी नहीं हैं।

## पति के पांच उपभेद।

अनुकूलरु दक्षिण बहुरि, धृष्टरु शठ अनभिज्ञ।
पाच भांति के पति कहे, जे कवि काव्य अभिज्ञ॥

भा०–पति पांच प्रकार के होत हैं (१) अनुकूल, (२) दक्षिण, (३) धृष्ट, (४) शठ और (५) अनभिज्ञ।

## अनुकूल।

निज पतनी में रत सदा, सो अनुकूल बखान।
धन्य राम जिन जग सदा, एक तिया ब्रत ठान॥

भा०–जो पुरुष निज विवाहिता एकही स्त्री से प्रेम रखकर पर स्त्री से विमुख रहता है उसे अनुकूल कहते हैं। यथा—श्रीरामचन्द्रजी को धन्य है जिन्हों ने संसार में सदैव एक तिय ब्रत का पालन किया। यथा—

डोलत हैं इक संग सबै इक संग ही बोलत हैं मन भायक।
दूसरी बात न जानत ये निशि वासर संग रहैं सुखदायक॥
कौन करै समता इनकी गनिये इनहू का सदा खग नायक।
देखि परै खग राजन में इक सारस साँचे सिंगारस लायक॥

दक्षिण।

बहु नारिन को सुखद सम, सो दक्षिण पति जान।
मन मोहन ब्रज तियन पै, राखत प्रेम समान॥

भा०—अनेक स्त्रियों पर समान प्रीति करनेवाले पुरुष को दक्षिण कहते हैं। यथा—मनमोहन ब्रज नारियों पर एक समान प्रेम रखते हैं।

निज निज मन के चुनि सबै, फल लेहु इक बार।
यह कहि कान्ह कदम्ब की, हरष हिलाई डार॥

धृष्ट।

धृष्ट कलंकी निलज पुनि, करै दोष निरशंक।
ज्यों ज्यों बरजत ताहि तिय, त्यों त्यों लागत अंक॥

भा०—अत्यन्त अपमानित होने पर भी नम्र लज्जाहीन, अधम, निश्शंक अपराध करनेवाले पुरुष को धृष्ट कहते हैं। यथा तिय ज्यों ज्यों बर्जती है त्यों त्यों नायक अंक में लगता जाता है, अर्थात् धिक्कारने पर भी नहीं मानता।

शठ।

शठ साधत निज काज, मुख मीठो हिय कपट मय।
प्यारी गारी आज, मिसरी तें मीठी लगै॥

भा० छलपूर्वक अपराध छिपाने में चतुर तथा अपना काज साधने के निमित्त मधुर-भाषी पुरुष को शठ नायक कहते हैं। यथा—प्यारी आज की तुम्हारी गाली हमको तो मिश्री से भी अधिक मीठी लगती है। यहां छल से अपना कार्य साधने के लिये ही नायक ने गालियों को मीठी बताया है।

अनभिज्ञ।

नहिं बूझत अनभिज्ञ है, नारि विलास अनेक।
करि हारी सब जतन तऊ, बलम न समुझै नेक॥

भा०—श्रृंगारादि रसानुकूल विषय का यथोचित ज्ञाता न होने वाले पुरुष को अनभिज्ञ कहते हैं। यथा—नायिका सब प्रयत्न करके थक गई परन्तु बलमजी कुछ भी नहीं समझे।

## उपपति।

उपपति ताहि बखानहीं, जो परतिय के मीत।
ब्याह प्रथा जिन निरमई, करी बड़ी अनरीत॥

भा०—अन्य की स्त्रियों पर अनुरक्त रहनेवाले पुरुष को उपपति कहते हैं। यथा—जिन्हों ने ब्याह की रीति चलाई है, उन्हों ने बड़ी अनरीत की है। अभिप्राय यह है कि अन्यत्र (बाहर) जाना यथेच्छ नहीं बन पड़ता। अर्थात् निज स्त्री के कारण पर स्त्री रमण करने का अवसर नहीं मिलता।

## उपभेद।

याके दोय प्रकार के, उपपति भेद बखान।
बचन चतुर इक है तहाँ, क्रिया चतुर बिय जान॥

भा०—इस (उपपति) के दो भेद हैं १ वचन चतुर और २ क्रिया चतुर। (बिय=दूसरा)

## वचन चतुर।

वचन चतुर साधत सदा, चतुर उक्ति सों काज।
तुव घर पैठ्यो चोर इत, प्रिया फिरत कहँ आज॥

भा०—वचन चातुरी से अपना कार्य साधने वाले पुरुष को वचन चतुर कहते हैं। यथा—प्यारी आज तू यहाँ कहाँ फिरती है तेरे घर में तो चोर घुसा है। अभिप्राय यह है कि नायिका शीघ्र अपने सूने घर में वापिस जावे और सहायतार्थ नायक को भी साथ लेती जावे इसी बहाने से नायक अपना अभीष्ट संपादित करता है।

## क्रिया चतुर।

क्रिया चतुर रचि छल क्रिया, साधत अपनो काज।
नैन मूँदि सूचित कियो, प्रिया माझ मिलु आज॥

भा०—छल क्रिया करके अपना कार्य साधनेवाले पुरुष को क्रिया चतुर नायक कहते हैं। यथा—नेत्र मूँदकर नायक ने यह सूचित, प्रिया

### वैशिक।

वार वधुन को रसिक रह, वैसिक अलज अभीत।
बहुत फजीहतहू भये, तजत न गणिका प्रीत॥

भा०—वेश्यानुरागी तथा निर्लज्ज और निडर पुरुष को वैशिक कहते हैं। यथा - अत्यन्त फजीहत होने पर भी गणिका से प्रीति नहीं छोड़ता।

## नायक भेदों का संक्षिप्त विवरण।

स्वभावानुसार—मानी।
दशानुसार—प्रोषित।
धर्मानुसार ३—पति, उपपति, वैशिक।
पति के ४ उपभेद—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ, अनभिज्ञ।
उपपति २ उपभेद—वचन चतुर, क्रिया चतुर।
वैशिक के उपभेद नहीं हैं।

नायिका के सदृश नायक के भी उतनेही भेदोपभेद हो सकते हैं परन्तु उनमें सार न जानकर आचार्यों ने मुख्य मुख्य भेद ही वर्णन करना उचित समझा,बुधजन इतनेही से विचार कर लेंगे।

---

इति शृंगार रस।

## (२) हास्यरस।

थाई जाको हास्य है, वहै हास्य रस जानि।
तहँ कुरूप कुवच कहब, कछु विभाव ते मानि॥
भेद मध्य अरु ऊच स्वर, हँसिबोई अनुभाव।
हरष चपलता औरहू, तहँ संचारी भाव॥
स्वेत रंग रस हास्य को, देव प्रमथ पति जास।
ताको कहत उदाहरण, सुनतहि आवे हास॥

भा०—जिस रस का स्थायीभाव हास्य हो उसे हास्यरस कहते हैं, कुरूपता मदक और अनुचित कहना उद्दीपन और इसके पात्र

विभाव है इसी प्रकार मध्योच्च स्वर हँसना अनुभाव तथा हर्ष चपलता (अचलता) आदि सञ्चारीभाव माने हैं, इसका रंग श्वेत और प्रमथ देवता है। यथा—

ऊधो तेरे यार ऐसे है हैं रिझवार जाय जानती विचार तोपै रूधो हो न जायगो। करतो विचार भाति भाति के सुभाय भाय केती बड़ी बात छुती याको अटकायवो॥ ग्वाल कवि पीठन पै एक एक हाटी बाधि नीके मनमोहन को करतो रिझायवो। यातो कहू कोई बहुरूपिया सलाम करि सीख लेतो हम सब कूबर बनायवो॥

रूप मे कसर नाही राग मे कसर नाही लाग मे कसर नाहि लाजहू की घेरी हैं। रंग म कसर न कसर है उमगहू मे प्रण के प्रसंगहू म परम घनेरी है॥ ग्वाल कवि हाव मे न भाव मे कसर यहां चाव मे कसर ना चलाक बहुतेरी हैं। तीन है कसर ऊधो काहू के न कूब इहा नारन न जाति अंग काहू की न चेरी हैं॥

आजु को कहें तो आठ मास लों न लागे ठीक काल्ह जो कहे तो मास सोरह चलावहीं। पाच दिन कहे पाच बरस बिताय देहि पाख जो कहै तो लो पचास पहुँचावहीं॥ मनत प्रधान जौपै ताहू पै न त्यागे द्वार आपना लजान फेर वाहू को लजावहीं। ऐसे सत्यवादी सरदार हैं देवैया जरा काहे को पवैया तहा जीवत ला पावहीं॥

हम पतनी सो कहे सुन सपने की बात अकथ कहानी रात बरबस हारे तो। चानी म स्वर्ग तो जिमी गाड़ के धरो हो ताहि मन मे विचार खोदि हाथ के निकारे तो॥ इतने मे आयो कविराज एक ताहि स्मै पढो ता कवित्त हा तो रीवा अनुसारे ता। हो तो कुल दाग बडे जेहन के भाग भरी जाग न परो तो म रुपैया देइ डारो तो॥

दानी कोउ नाहि ना गुलाबदानी रोददानी पीकदानी घनी शोभा इनहीं म लहे है। मानत गुणी को गुणही में प्रगटत देख्यो यातें गुणी जन मन सावधानी गहे हैं॥ हयदान हेमदान गजदान भूमिदान सुकवि सुनाये औ पुरानन म कहे है। अबतो कलमदान जुजदान जामदान खान-दान पानदान कहिवे को रहे हे॥ पौर के किवार देत घरै सबै गारि देत साधुन को दोष देत प्रीति ना चहत हैं। मांगने को ज्वाब देत बात कहे रोय देत लेत देत भाज देत ऐसे निवहत हैं॥ पागहू के बन्द देत बारन की गाठ देत पर्दनि की कान्ह देन देतई रहत हैं। एते पै सबैई कहैं दाऊ

### वैशिक।

वार वधुन को रसिक स्वइ, वैसिक अलज अभीत।
वहुत फजीहतहु भये, तजत न गणिका प्रीत॥

भा०—वेश्यानुरागी तथा निर्लज्ज और निडर पुरुष को वैशिक कहते हैं। यथा—अत्यन्त फजीहत होने पर भी गणिका में प्रीति नहीं छोड़ता।

## नायक भेदों का संक्षिप्त विवरण।

स्वभावानुसार—मानी।
दशानुसार—प्रोषित।
धर्मानुसार ३—पति, उपपति, वैशिक।
पति के ४ उपभेद—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ, अनभिज्ञ।
उपपति २ उपभेद—वचन चतुर, क्रिया चतुर।
वैशिक के उपभेद नहीं हैं।

नायिका के सदृश नायक के भी उतनेही भेदोपभेद हो सके हैं परन्तु उनमें सार न जानकर आचार्यों ने मुख्य मुख्य भेद ही वर्णन करना उचित समझा,बुधजन इतनेही से विचार कर लेंगे।

---

इति शृंगार रस।

## (२) हास्यरस।

थाई जाको हास्य है, वहै हास्य रस जानि।
तहँ कुरूप क्रदव कहब, केछु विभाव ते मानि॥
भेद मध्य अरु ऊंच स्वर, हँसिवोई अनुभाव।
हरष चपलता औरहु, तहँ सचारी भाव॥
स्वेत रग रस हास्य को, देव प्रमथ पति जास।
ताको कहत उदाहरण, सुनतहि आवे हास॥

भा०—जिस रस का स्थायीभाव हास्य हो उसे हास्यरस कहते हैं, कुरूपता मटक और अनुचित कहना उद्दीपन और इसके पात्र आलम्बन

त्रिभाव हैं इसी प्रकार मध्योच्च स्वर हँसना अनुभाव तथा हर्ष चपलता (चञ्चलता) आदि सचारीभाव माने हैं, इसका रंग श्वेत और प्रमथ देवता है। यथा—

ऊधो तेरे यार ऐसे हैं रिझवार जाय जानती विचार तो रुधौ हो न आयवो। करतो विचार भांति भांति के सुभाय भाय केते बडी बात हुती वाको अटकायवो॥ ग्वाल कवि पीठन पै एक एक हार्ड वारि नीके मनमोहन को करनो रिझायवो। यातो कहूं काहे बहुरुपिया ललास करि सीरा लेतो हम सब कुबर बनायवो॥

रूप मे कसर नाहीं रंग मे कसर नाहीं लाग मे कसर नाहिं लाजहू की घेरी है। रस म कसर न कसर है उमगहू मे प्रण के प्रसंगहु मे परम घनेरी है॥ ग्वाल कवि हाव मे न भाव मे कसर यहा चाव मे कसर ना चलाक बहुतेरी है। तीन है कसर ऊधो काहू के न कुव इहा नाहन न जाति अरु काहू की न चेरी है॥

आजु को कहै तो आठ मास लौं न लागे ठीक काल्ह जो कहैं तो मास सोरह चलावहीं। पाच दिन कहे पाच बरस बिताय देहि पाख जो करें तो दो पचास पहुँचावहीं॥ भनत प्रधान जोपैं ताहू पै न त्यागे द्वार आपना लजात फेर याहू को लजावहीं। ऐसे सत्यवादी सरदार है देवैया जहा काहू को पर्वैया तहा जीवन लो पावहीं॥

सूम पतनी सो कहै सुन सपने की बात अकथ कहानी रात बरबस हारो तो। चानी मे लगे ता जिमी गाड के धरो तो ताहि मन मे विचार खोदि हाथ के निकारो तो॥ इतने मे आयो कविराज एक ताहि समे पढो ता कवित्त हा तो दीयो अनुमारो तो। हो तो कुल दाग बड़े जेठन के भाग अरी जाग न परो तो मैं रुपया देइ डारो तो॥

दानी कोउ नाहि ना गुलाबदानी गोददानी पीकदानी घनी शोभा इनहीं मे लहे है। मानस गुणी को गुणही मे प्रगटत देख्यो यातें गुणी जन मन सावधानी गहे हैं॥ हयदान हेमदान गजदान भूमिदान सुकवि सुनाये औ पुरानन मे कहे है। अबनो कलमदान जुजदान जामदान खान उन पानदान कहिवे को रहे है॥ पौर के किवार देत घरै सबै गारि देत साधुन को दोष देत प्रीति ना चहत हैं। मागने को ज्वाव देत बात कहे रोय देत लेत देत भाज देत ऐसे निबहत हैं॥ पागहू के बद देत बारन की गाठ देत पर्दनि की कान्नु देन देतई रहत है। एते पै सबई कहैं दाऊ दान देत नाहीं जानन जो यातो जाप देतई रहत हैं॥

पान ते ज्ञान की खान खुले विन पान खुसी नहिं होत है वानी।
चाहत हैं सव जोगी जती अरु देवन में महादेवहु ध्यानी॥
याकी समान न आन कछू मुहि दीखत है जग मुक्ति निसानी।
नग ते ऊंची तरंग उठें जब अंग में आवति भंग भवानी॥

शम्भु को वाहन वैल वली वनिताहु को वाहन सिंहहि पेखिके।
मूसे को वाहन है सुत एक सो दूजो मयूर के पंख विशेखिके॥
भूषण है कटि त्रैन फनिन्द के वैर परे सव तें सव लेखिके।
तीनहुँ लोक के ईश गिरीश जो योगी भये घर की गति देखिके॥

जल पीवे तो पीवे न खावे कछू जिहिं चित्त नहीं अभिलाखिवे है।
वर वित्त की वातें कछू न करे मनवृत्ते कछू नहि भाखिवे है॥
नित नित्त कवित्त करे जसके जिहि प्रेम सुधारस चाखिवे है।
कहुँ कोउ जो ऐसा मिले कवि एक सुतो हमहू कहुँ राखिवे है॥

हँसि हँसि भजें देखि दुलह दिगंवर को पाहुने जे आवें हिमाचल के विवाह में। कहै पदमाकर सुकाहू सो कहै को कहा जोई जहा देखे सो हँसेई तहा राह में॥ मगन भयेई हँसे नगन महेश ठाढे औरउ हँसेउ हँसें हँसी के उमाह में। सीस पर गंगा हँसे भुजनि भुजंगा हँसे हासही को दंगा भयो नंगा के विवाह में॥

वर अनुहार वरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
विष्णु वचन सुनि शिव मुसकाने। निज निज सेन सहित विलगाने॥
नाना जिनिस देखिकर कीसा। पुनि पुनि हँसत कोशला धीसा॥

---

इति हास्यरस।

## (३) करुण रस।

आलम्वन-प्रिय को मरण, उद्दीपन दाहादि।
थाई जाको शोक जहँ, वह करुण रस यादि॥
रोदन महिपतनादि जहँ, वरणत कवि अनुभाव।
निर्वेदादिक जानिये, तहँ संचारी भाव॥
चित्र कबूतर के वरण, वरुण देवता जान।
या विधि को या करुण रस, वरणत कवि कवितान॥

भा०-प्रिय बधु आदि की अपार हानि व मरण आलम्बन, तथा उनकी दु खित दशा वा मृतक का दाह कर्म्म, उनकी प्रिय वस्तुओ का दर्शन गुण श्रवण आदि उद्दीपन, रोना, पृथ्वी पर गिर पड़ना आदि अनुभाव भाग्य की निन्दा पश्चात्तापादि सचारी भाव और शोक जिसका स्थायीभाव है, उस रस को करुण रस कहते हैं। रग इसका कबरा कबूतरसा और देवता इसका वरुण है। यथा—

पुर तें निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकीं भरि भालकनी जल की पट सूख गये मधुराधरवै॥
फिरि बूझति हैं चलनोऽब कितो पिय पर्ण कुटी करिहो कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अखियां अति चारु चलीं जल च्वै॥

---

इति करुण रस।

## (४) रौद्ररस।

थाई जाको क्रोध अति, वहै रौद्ररस नाम।
आलम्बन रिपु रिपु उमँड़, उद्दीपन तिहि ठाम॥
भृकुटि भंग अति अरुणई, अधर दसन अनुभाव।
गरब चपलता औरहू, तहँ सचारी भाव॥
रक्त रंग रस रौद्र को, रुद्र देवता जान।
ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दै कान॥

भा०-क्रोध की पुष्टता (स्थिरता) को रौद्ररस कहते है रिपुही इसका आलम्बन है और रिपु की उमग उद्दीपन है, इसी प्रकार भ्रूभगता तथा नेत्रो की अरुणाई, अधर दशनादि अगों का स्फुरणादि (फरकना) अनुभाव हैं और गर्व (अभिमान) तथा चपलतादि संचारी भाव है इसका रक्त (लाल) वर्ण और रुद्र देवता है। यथा—

वारि टारि डारौं कुम्भकर्णहि विदारि डारौं मारौं मेघनादै आज यौ बल अनन्त हो। कहै पदमाकर त्रिकुटहीं को ढाहि डारौं डारत करेई यातुधानन को अत हो॥ अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ है उचारौं इमि [illegible]

जैसो तैं न मोसो कहू नेकहू डरात हुतो ऐसो अब हौं हू तोसों नेकहू न डरिहौं। कहै पदमाकर प्रचंड जो परैगो तो उमड करि तोसो भुजदंड ठोंकि लरिहों॥ चलो चलु चलो चलु विचलु न बीचहीं तें कीच बीच नीच तौ कुटुम्ब को कचरिहों। एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गंग की कछार मे पछार छार करिहों॥

धोरो सबै रघुवंस कुठार की धार में बारन बाजि सरथ्थहि।
बान के वायु उडाय के लच्छन लच्छी करौं अरिहा समरथ्थहिं॥
रामहि वाम समेत पठै बन सोक के भार मे भूजों भरथ्थहि।
जो धनु हाथ लियो रघुनाथ तो आजु अनाथ करो दशरथ्थहि॥

तु० रा०–जो शत शंकर करहिं सहाई। तदपि हतौ रण राम दुहाई॥

---

इति रौद्ररस।

## (५) वीररस।

जा रस को उत्साह शुभ, है इक थाई भाव।
सुरस वीर है चार विधि, कहत सबै कविराव॥
युद्ध वीर इक नाम है, दयावीर बिय नाम।
दानवीर तीजो सुपुनि, धर्मवीर अभिराम॥
युद्ध वीर को जानिये, आलम्बन रिपु जोर।
उद्दीपन ताको तबहिं, पुनि सेना को सोर॥
अंग फरकत दृग अरुणई, इत्यादिक अनुभाव।
गरब असूया उग्रता, तहँ संचारी भाव॥
चन्द्र देवता वीर को, कुन्दन वरण बिशाल।
ताको कहत उदाहरण, सुनि जन होत खुशाल॥

भा०–जिस रस का सुन्दर उत्साह पूर्ण स्थिर ( स्थायीभाव ) हो उसे वीररस कहते हैं इसके चार भेद हैं, १ युद्धवीर, २ दयावीर, ३ दानवीर, ४ धर्मवीर। रिपु का विभवही युद्धवीर का आलम्बन है और सैन्य के मारू वाद्यादि तथा ( करखागानादि ) कोलाहल उद्दीपन है इसी

प्रकार तथा अंग स्फुरण नेत्रों की अरुणाई अनुभाव हैं और गर्व असूया (अर्थात् शत्रु को पराजित करने की अभिलाषा) उग्रतादि संचारी है इसका देवता चन्द्र सुन्दर सुवर्ण वर्ण है।

## युद्धवीर।

साहैं अस्त्र ओढ़े जे न छोड़ें सीस संगर की लंगर लंगूर उच्च ओज के अतंका में। कहैं पद्माकर त्यौं हुकरत फुकरत फैलत फलात फाल बाधत फलंका में॥ आगे रघुवीर के समीर के तने के संग तारीदे तड़ाक तड़ा तड़के तमंका में। संका दै दसानन को हंका दै सुवंका वीर डंका दै विजै को कपि कूद पर्‍यो लंका में॥

भोगतें भाफलों सूर चलैं अरु शूर चले हैं कबन्ध परे लो॥
ये सिरताज गनी मन को प्रण तौ न टरे दुहु लोक टरे लो।
ऐसी वही अरबी गरबी शिव शंकरहू यमलोक डरे लो।
सो सिर काटि गनी मन के तरवार वही तरवा के तरे लो॥

धनुष चढ़ावत भै तबहिं, लखि रिपुकृत उतपात।
हुलसिगात रघुनाथ को, बखतर में न समात॥

इतना कहत नीति रस भूला। रण रस विटप पुलक मिस फूला॥

## दानवीर।

दान समय को ज्ञान पुनि, याचक तीरथ गौन।
दानवीर के कहत है, ये विभाव मति भौन॥
तृण समान लेखत सुधन, इत्यादिक अनुभाव।
व्रीडा हरषादिक गनौ, तहँ संचारीभाव॥

भा०—दान उत्साह की पुष्टता को दानवीर कहते हैं याचक और तीर्थ गमनादि इसका आलम्बन है और दान समय का ज्ञानोत्साह उद्दीपन है तथा अतृणगणना और सर्वस्व देने की उदारता अनुभाव हैं और व्रीडा हर्षादि संचारी हैं। यथा—

सम्पति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना। कहै पद्माकर सो हेम हय हाथिन के हलके हजारन के वितर विचारै ना॥ गज गज बकस महीप रघुनाथराव गजही के धोखे कहू काहू देइ डारै ना। याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरि तें

वकसि वितुड दये झुंडन के झुंड रिपु मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को। कहै पदमाकर करोरन को कोष दये षोडष्ठ दीन्हें महादान अधिकारी को। ग्राम दये धाम दये अमित आराम दये अन्न जल दीने जगती के जीवधारी को॥ दाता जयसिंह दोय बातैं तो न दीनी कहू वैरिन को पीठि औ दीठि पर नारी को॥

तु० रा०-जो सम्पति शिव रावणहिं, दीन्ह दिये दश माथ।
सो सम्पदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

## दयावीर।

दयावीर में दीन दुख, वरणत आदि विभाव।
दूरि करब दुख मृदु कहब, इत्यादिक अनुभाव॥
सुधृति चपलता औरहूं, तहँ सचारी भाव।
दयावीर वरणत सबै, याही विधि कविराव॥

भा०-दीनता देखकर जो चित्त मे दया की स्थिरता होती है वही दयावीर है इसमें दीनताही आलम्बन है मधुर वाक्यो द्वारा दुख दूर करने की चेष्टा करना अनुभाव है, दीन दुख वर्णन उद्दीपन, धृति और चपलता सचारी है। यथा—

पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुतही को नरायन।
त्यौं पदमाकर लात लगे पर विप्रहु के पग चौगुने चायन॥
को अस दीन दयाल भयो दशरथ्थ के लाल से सूधे सुभायन।
दौरे गयद उवारिबे को प्रभु वाहन छोड़ि उपाहने पायन॥

तु० रा०-सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा विशाला॥

## धर्मवीर।

धर्मवीर के कवि कहत, ये विभाव उर आन।
वेद सुमृति शीलन सदा, पुनि पुनि सुनव पुरान॥
वेद विहित क्रम वचन वपु, औरहु है अनुभाव।
धृति आदिक वरणत सुकवि, तहँ संचारीभाव॥

भा०-वेद स्मृति के वाक्यो मे मान्यशीलता आलम्बन तथा पुराणादि श्रवण उद्दीपन विभाव हैं वेदविहित कर्म अनुभाव और धृति क्षमा दयादि धर्म्म के दश लक्षण सचारी है। यथा—

तृण की समान वन धाम राज त्याग करि पाल्यो पितु वचन जो जानत जनैया है। कहै पद्माकर विवेकही को ,बानो बीच साच्यो सत बीर धीर धीरज धरैया है॥ सुस्मृति पुराण वेद आगम कह्यो जो पथ आचरत सोई शुद्ध करम करैया है। मोटमति मटर पुरन्दर मही को धन्य धरम धुरन्धर हमारो रघुरैया है॥

तु० रा०—शिवि दधीच बलि जो कछु भाषा।
तन धन तजेउ वचन प्रण राखा॥

धर्मवीर के अन्तर्गत ही एक भेद 'त्यागवीर' भी है। यथा—
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाईं।

इति वीररस।

## (६) भयानक रस।

जाको थायी भाव भय, वहै भयानक जान।
दृश्य भयंकर गजर कछु, ते विभाव उर आन॥
कम्पादिक अनुभाव तहँ, संचारी मोहादि।
काल देव कोयला वरण, सुभयानक रसयादि॥

भा०—भय की स्थिरता (पूर्ण पुष्टता) को भयानक रस कहते हैं। भयंकर दृश्य विभाव है और कम्प इसका अनुभाव है, इसी प्रकार मोहादि संचारी हैं। इसका काल देवता और कृष्ण वर्ण है।

बम्मन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर खोरि खोरि धार आइ धावत तगूर है। तैसो कवि कौतुकी डेगत ढीलो गात के के जात के अघात सहै जीमे कहे कूर हैं॥ वाल किलकारी के के तारी दै दै गारी देत पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं। बालधि बदन लागी ठौर ठौर दीन्ही आगी विंध्य की दवारि कैधो कोटि शत सूर हैं॥

तु० रा०—डरपे गीध वचन सुनि काना।
हाहाकार करत सुर भागा।

## (७) वीभत्स रस।

थायी जासु गलानि है, सो वीभत्स जनाव।
पीव भेद मज्जा रुधिर, दुर्गंधादि विभाव॥
नाक मूंदिवो कंप तन, रोम उठव अनुभाव।
मोह असूया मूरछा, ये संचारी भाव॥
महाकाल सुर नील रँग, सो विभत्स रस जानि।
ताको कहत उदाहरण, रस ग्रथनि उर आनि॥

भा०—ग्लानि की स्थिरता (पूर्ण पुष्टता) को वीभत्स रस कहते हैं। पीव भेद, मज्जा (हड्डियों के भीतर का मेद) रक्तादिको की दुर्गंध विभाव है और तन कम्प रोमांच आदि अनुभाव हैं। इसी प्रकार मोह मूर्छा सचारी है इसका महाकाल देव और नील वर्ण है। यथा—

बैठिवे की उठवे की चलिवे की बोलिवे की जानत न एकौ चाल आये जग ढांचे मे। देखिवे में मानुष की आकृति दिखाई परे पर नर पशू औ परिन्द हैं सु जाचे में॥ ग्वाल कवि जानी है विरंचि तुन्द्र अनुन को डारे और ठौर लागि ख्यालन के खांचे मे। कूकर ते शूकर ते दासन तें उल्लुन ते खैंचि खैंचि जीव डारे मानुप के साचे में॥

काली महाकाल के समान है विशाल हेरि पकरि निशाचरन पट्ट पट्ट पटकत। नैन विकराल लाल रसना दशन दोउ भरि भरि खन मास गट्ट गट्ट गटकत है॥ लोथनि पै लोथ रुड मुन्ड ते विहीन केते उछरि उछरि भूम चट्ट चट्ट चटकत। जोगिनी सचीस के हथीस खून पूरे होत खप्पर में खून भरि घट्ट घट्ट घटकत॥

पढत मन्त्र अरु यन्त्र अत्र लीलत इमि जुग्गिनि।
मनहु गिलत मद मत्त गरुड तिय अरुण उरग्गिनि॥
हरवरात हरपात प्रथम परसत पल पगुन।
जहँ प्रताप जिति जग रग अँग अग उमगत॥
जहँ पदमाकर उतपत्ति अति रन रकतन नद्दिय वहत।
घस चकित चित्त चरधीन चुभि चकचकाइ चडी रहत॥

तु० रा०—मज्जहि भूत पिशाच वेताला।
श्रोणित सर कादर भय कारी॥

---

इति वीभत्स रस।

## (८) अद्भुत रस।

जाको थायी आचरज, सो अद्भुत रस गाव।
असभवित जेते चरित, तिनको लखत विभाव॥
बचन विचल बोलनि कँपनि, रोम उठनि अनुभाव।
वितरक शंका मोह ये, तहँ संचारी भाव॥
जासु देवता चतुर मुख, रंग बखानत पीत।
सो अद्भुत रस जानिये, सकल रसन को मीत॥

भा०—आश्चर्य की पूर्ण स्थिरता को अद्भुत रस कहते हैं असंभ-
ावित वस्तु, चरित्र तथा वार्ता आलम्बन हैं गुणों की विचित्रता व महिमा
उद्दीपन, इसी प्रकार वाक्यों की विचलता कपना तथा रोम उठना
अनुभाव और वितर्क सदेहादि सचारी हैं। ब्रह्मा इसके देवता हैं और
पीत वर्ण है। यथा—

सात दिन सात राति करि उतपात महा मारुत झकोरैं तरु
तोरे दीह दुख मे। कहैं पदमाकर करी त्यो धूम धारन ह्वै पनै पै न कान्ह
कहू आयो रोष रस मे॥ धारि छिगुनी के छोर ऐसो गिरि छाइ राख्यो
ताके तरे गाय गोप गोपी खरे सुख मे। देखि देखि मेघन की सेन अकु-
लानी रह्यो सिन्धु मे न पानी अरु पानी इन्द्रमुख में॥

मुरली बजाइ तान गाइ मुसक्याइ मद लटकि लटकि माई नृत्य
र निरत है। कहै पदमाकर गोविंद के उछाह अहि विष को प्रवाह प्रति
मुख ह्वै भिरत है॥ ऐसो फैल परत फुसकरतही मे मनों तारन को वृन्द
फूतकारन गिरत है। कॉप करि जौलों एक फन फुफकारे काली तौलों
बनमाली सोऊ फन पै फिरत है॥

तु० रा०—दिखरायो मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥
सती दीख कौतुक मग जाता।

## (७) वीभत्स रस।

थायी जासु गलानि है, सो वीभत्स जनाव।
पीब भेद मज्जा रुधिर, दुर्गंधादि विभाव॥
नाक मूंदिवो कंप तन, रोम उठब अनुभाव।
मोह असूया मूरछा, ये संचारी भाव॥
महाकाल सुर नील रँग, सो विभत्स रस जानि।
ताको कहत उदाहरण, रस ग्रंथनि उर आनि॥

भा०—ग्लानि की स्थिरता ( पूर्ण पुष्टता ) को वीभत्स रस कहते हैं। पीव भेद, मज्जा ( हड्डियों के भीतर का मेद ) रक्तादिकों की दुर्गंध विभाव है और तन कम्प रोमांच आदि अनुभाव हैं, इसी प्रकार मोह मूर्छा सचारी है इसका महाकाल देव और नील वर्ण है। यथा—

बैठिबे की उठबे की चलिबे की बोलिबे की जानत न एको चाल आये जग ढाचे मे। देखिबे मैं मानुष की आकृति दिखाई परे पर वह पशू औ परिन्द हैं सु जाचे मे॥ ग्वाल कवि जानी है विरञ्चि तुरत उनें को डारै और ठौर लगि ख्यालन के खांचे मे। कूकर तें शूकर तें रासभ तें उल्लुन तें खैंचि खैंचि जीव डारे मानुष के साचे मं॥

काली महाकाल के समान हैं विशाल हेरि पकरि निशाचरन पट्ट पट्ट पटकत। नैन विकराल लाल रसना दशन दोउ भरि भरि खून मास गट्ट गट्ट गटकत है॥ लोथनि पै लोथ रुड मुन्ड ते विहीन केते उछरि उछरि भूम चट्ट चट्ट चटकत। जोगिनी खवीस के हवीस खूब पूरे होत खप्पर में खून भरि घट्ट घट्ट घटकत॥

पढत मन्त्र अरु यन्त्र अन्त्र लीलत इमि जुग्गिनि।
मनहु गिलत मद मत्त गरुड तिय अरुण उरग्गिनि॥
हरवराल हरषात प्रथम परसत पल पगुन।
जहँ प्रताप जिति जग रग अँग अग उमगत॥
जहँ पद्माकर उतपत्ति अति रन रक्तन नद्दिय बहत।
चख चकित चित्त चरबीन चुभि चकचकाइ चंडी रहत॥

तु० रा०—मज्जहिं भूत पिशाच वैताला।
श्रोणित सर कादर भय कारी॥

---

इति वीभत्स रस।

## (८) अद्भुत रस।

जाको थायी आचरज, सो अद्भुत रस गाव।
असभवित जेते चरित, तिनको लखत विभाव॥
वचन विचल बोलनि कँपनि, रोम उठनि अनुभाव।
वितरक शका मोह ये, तहँ संचारी भाव॥
जासु देवता चतुर मुख, रग वखानत पीत।
सो अद्भुत रस जानिये, सकल रसन को मीत॥

भा०–आश्चर्य की पूर्ण स्थिरता को अद्भुत रस कहते हैं असंभवित वस्तु, चरित्र तथा वार्ता आलम्बन है गुणों की विचित्रता व महिमा उद्दीपन, इसी प्रकार वाक्यों की विचलता कपना तथा रोम उठना अनुभाव और वितर्क सदेहादि सचारी हैं। ब्रह्मा इसके देवता है और पीत वर्ण है। यथा—

सात दिन सात राति करि उतपात महा मारुत झकोरें झ तोरें दीह दुख में। कहैं पदमाकर करी त्यो धुम धारन हू पते पै न काहू आयो रोष रस मे॥ छोरि त्रिगुनी के कुन पेसो गिरि छाइ राख्यं ताके तरे गाय गोप गोपी खरे सुख मे। देखि देखि मेघन की सेन अकुलानी रह्यो सिन्धु मे न पानी अरु पानी इन्द्रमुख में॥

मुरली बजाइ तान गाइ मुसक्याइ मद लटकि लटकि माई नृत्य मे निरत है। कहै पदमाकर गोविंद के उछाह अहि विष को प्रवाह प्रति मुख ■ फिरत है॥ पेसो फैल परत फुसकरतही मे मनो तारन को वृन्द फूनकारन गिरत है। कोप करि जौलों एक फन फुफकावे काली तौलों वनमाली सौऊ फन पै फिरत है॥

तु० रा०–दिखरायो मातहिं निज, अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥
सती दीख कौतुक मगु जाता।

## (६) शांतरस।

सुरस शांत निर्वेद है, जाको थायी भाव।
सत संगति गुरु तपोवन, मृतक समान विभाव॥
प्रथम रुमांचादिक तहां, भाषत कवि अनुभाव।
धृति मति हरषादिक कहे, शुभ संचारीभाव॥
शुद्ध शुक्ल रँग देवता, नारायण है जान।
ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दै कान॥

भा०—निर्वेद (वैराग्य) की स्थिरता को शान्तरस कहते हैं, सत्सगति और गुरु इसके आलम्बन तथा तपोवन और मृतक आदि उद्दीपन विभाव हैं। इसी प्रकार रोमाच अनुभाव धृति (धैर्य) और मति (सुबुद्धि) आदि सचारीभाव हैं। इसका देवता नारायण और रग श्वेत है। यथा—

मानुष हो तो वही रसखान बसौ ब्रज गोकुल गोप गुवारन।
जो पशु हो तो कहा बस मेरो चरो नित नद की धेनु मँझारन॥
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरदर कारन।
जो खग हों तो बसेरो करो बहि कालिन्दी कूल कदंब की डारन॥

प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा प्रगटे नर केहरि खम्भ महा।
भयराज ग्रस्यो गजराज कृपा ततकाल विलम्ब किये न तहां॥
सुर साखी दै राखी है पाडु वधू पट लूटत कोटिक भूप जहा।
तुलसी भजु सोच विमोचन को जन को प्रण राम न राख्यो कहां॥

जड पच मिले जेहि देह करी करनी लघु या धरणीधर की।
जनकी कहु क्यो करिहै न सम्हार जो सार करै सचराचर की॥
तुलसी कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमाघर की।
जग में गति जाहि जगतपति की परवाहि है तारि कहा नर की॥

सो जननी सो पिता सोइ भ्रात सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो।
सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक सो गुरु सो सुर साहब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्राण समान कहा लों बनाइ कहा बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सो राम को होइ सबेरो॥

तिन तें खर शूकर स्वान भले जडता वश ते न कहै कछुवै ।
तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं सो सही पशु पूछ बिसानन द्वै ॥
जननी कत भार मुई दश मास भई किन बाझ गई किनच्वै ।
जरि जाउ सो जीवन जानकि नाथ रहै जग में तुम्हरो बिन ह्वै ॥
आगम वेद पुराण बखानत मारग कोटिन जाहि न जाने ।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आप को ईश कहावत सिद्ध सयाने ॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे जप जोग विराग लै जीव पराने ।
को करि शोच मरै तुलसी हम जानकि नाथ के हाथ बिकाने ॥
वन वितान रवि शशि दिया, फल भख सलिल प्रवाह ।
अवनि सेज पखा पवन, अब न कछू परवाह ॥
तु० रा०-परिहरि सकल भरोस, राम भजहिं ते चतुर नर ।

इन प्रधान नवरसो के अतिरिक्त नाटकादि मे पाच रस और पाये जाते हैं जिनके लक्षण नामही से ज्ञात होते हैं, इनको उपरस भी कह सके हैं, उनके लक्षित उदाहरण नीचे लिखते हैं ।

## (१) वत्सल ।

१ मेरे प्राण नाथ सुत दोउ ।
२ भैया कहहु कुशल दुउ बारे ।
३ बार बार मुख चुम्बति माता ।

## (२) सख्य ।

कोनेहुँ विधि मोसन ये प्रीती ।
सखा नीति तुम नीक विचारी ।
सुनत सुदामा मीत, ठाढे हैं निज पौरि अब ।
दौरे श्याम सप्रीत, छांडि राज के काज सब ॥

## (३) दास्य ।

१ हम सेवक स्वामी सियनाह ।
२ चरण कमल चापत विधि नाना ।

विदूषक।

सोइ 'विदूषक' रचि क्रिया, दम्पति करे निहाल।
'चित्रे कोक दिय लाल कहँ, त्यों सारस कर बाल'॥ यथा-

कटि हलाय हलकाय कछु, अद्भुत ख्याल बनाय।
अस को जाहि न फाग में, परगट दियो हँसाय॥

सखी वर्णन।

सो सखि राखहिं जासु सों, दम्पति कछु न दुराय।
मिलो लाल सों जो लली, तो हौं देहुँ सजाय॥

सखी उन स्त्रियों को कहते हैं, जिनसे नायिका नायक कुछ भेद नहीं छिपाते।

सखी भेद।

बचन चातुरी सों करें, जे सखिया निज काज।
तिन कहँ चार प्रकार की, बरणत हैं कविराज॥
प्रथम कही हितकारिनी, दुतिय सुव्यंग्य विदग्ध।
'अन्तरंग' बहिरंगिनी, तृतिय चतुर्थ सुलब्ध॥

(१) हितकारिणी।

'हितकारिनि' स्वइ जो करत, छल तजि तिय के काम।
तिय आनन पै स्वेद लखि, कियो विजन अभिराम॥ यथा-

छनिक न छोड़त सुन्दरी, सखी हितू को संग।
सखी बढ़ावत रहत त्यों सुन्दरि हिये उमंग॥

(२) व्यंग्य विदग्धा।

बचन व्यंग्य युत कहत जो, सो सखि 'वचन' विदग्ध।
बिन गुन मुकता माल अलि, कहाँ भई तुहि लब्ध॥

(३) अन्तरंगिणी सखी।

अन्तरंगिनी की क्रिया, आन सकत नहिं जानि।
ल्याइ कान्ह की चांसुरी, धरी सुन्दरी पानि॥

१ मैं, २ चतुर, ३ पसीना, ४ पंखा, ५ सुलद, ६ प्राप्त, ७ हाथ।

## (४) बहिरंगिणी।

करै सखी बहिरंगिनी, खुले खजाने काम।
जे मन नाहिं निवाहतीं, अलि वे पापिनि वाम॥

### सखी कर्म।

मंडन-शिक्षा सहित ये, उपालम्भ परिहास।
चार कर्म सखियान के, कविजन किये प्रकास॥

### प्रथम कर्म मंडन

मंडन तियहिं सिंगारिबो, बरनहिं बुद्धि अनूप।
दीन्हों सुन्दरि को बना, अली मोहिनी रूप॥ यथा—

सखी प्रिया की देह में, सजे सिंगार अनेक।
कजरारी अँखियान में, भूलो काजर एक॥
कहा करौं जो आगुरिन, अनी घनी चुभि जाय।
अनियारे चख जानि सखी, कजरा देत डराय॥

### मंडनान्तर्गत नख शिख वर्णन।

नखतें शिख लौं बरणिये, देवी दीपति देखि।
शिख तें नख लौं मानुषी, केशवदास विशेखि॥

भा०—देवी और देवता की दीप्ति नख से शिख तक वर्णन की जाती है और नर व नारियों की शोभा शिख से नख पर्यन्त वर्णन की जाती है। विस्तार भय से नख शिख के कुछ थोड़ेही उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

पगतल—तुव पदतल मृदुता चितै कवि वर्णत सकुचाहिं।
मनते आवत जीभ लौं, मति छाले परि जाहिं॥

पदलालिमा—लिखन चहो भमि बोरि जब, अरुणाई तुव पांय।
तब लेखनि के शीश का, ईंगुर रँग ह्वै जाय॥

पाद—तुव पद सम तन पद्म को, कह्यो कौन विधि जाय।
जिन गख्यो निज शीश पर, तुव पद को पदजाय॥

गुल्फ—गोरे गोल अमोल सुठि, सुन्दर सहज सुढार।

पिंडुरी—प्यारी पिंडुरी की दिपति, अम्बर मे न समाय।
दीप शिखा फानूस लौ, न्यारी झलकत आय॥

जंघा—शीश जटा धरि मौन गहि, खड़े रहे इक पाय।
येतो तप कदली कियो, लह्यो न जंघ सुभाय॥

कटि—सुनियत कटि सूक्षम निपट, निकट न देखत नैन।
देह मध्य यों जानिये, ज्यो रसना में वैन॥

नाभी—उदर बीच मन जाय कै, बूढ्यो नाभी माहि।
कूप सरोवर के परे, कोऊ निकसत नाहिं॥

रोमराजी—लसति उदर रोमावली, अति विचित्र बारीक।
खिची कनक की भूमि पर, मृग मद की जनु लीक॥

त्रिवली—मो मन मज्जन को गयो, उदर रूप सर धाम।
पर्‌यो सु त्रिवली भँवर तें, नाभि भँवर मे आय॥

यौवन—निरखि निरखि वा कुचन गति, चकित होत को नाहि।
नारी उर तें निकसि के, पैठत नर उर माहि॥
भाजि गई-लरकाई मनो लरिके करिके दुहु दुदुभि औधि॥

भुज—गोरे गोरे दुति भरे, प्यारी के भुज मूल।
दरसत सुख सरसत महा, बरसत मोद अतूल॥

करतल—बड़े कहावत आपु हो, गरुये गोपीनाथ।
तौ बदि हौ जो राखिहो, हाथन लखि मन हाथ॥

हथेली की लालिमा—दीप हथेरिन की दिपति, औ मिंहदी के संग।
लाली मायन साझत, ज्यो सूरज को रंग॥

आंगुरी वर्णन—चम्पकली करगहि कुंवरि, हुती सखी को देति।
वह बौरी धोखे परी, अँगुरी गहि गहि लेति॥

पीठ—जोरि रूप सुवरन रची, विधि रचि पचि तुव पीठ।
कीन्हीं रखवारी तहां, व्याली वेणी दीठ॥

अधर—लिखन चहत रस लीन जब, तुव अधरन की बात।
लेखनि की विधि जीह बँधि, मधुराई तें जात॥

दन्त—मोल लेन को जगत जिय, विधि जौहरी प्रवीन।
राखे विद्रुम के डवा, ले द्विज मुकुत नवीन॥

रसना—नाथ सूत स्वर सिंधु की, वचन मुक्त की सीप।
कै रसना सब रसन की, पोथी गिरा समीप॥

मुखवास–अगर अतर की नगर में, कहू रही नहिं चाह ॥
वगर वगर सब डगर मे, तुव मुख वास प्रवाह ॥
हँसी—सहज सहेलिन सो जु तिय, विहँसि विहँसि बतराति।
शरद चन्द की चादनी, मन्द परति सी जाति ॥
कपोलतिल–गोरे मुख पर श्याम तिल, ताहि करा पर नाम।
मानो चन्द विछाय कै, बैठे शालिग राम ॥
बेसरिमोती–बेसरि मोती धन्य तुहि, को बूझै कुल जाति।
पियत रहत तिय अधर को, रस निधरक दिनराति॥
लोचन—अमी हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जिहिं चितवत इक वार॥
भृकुटी—भृकुटी कुटिल विलोकि यों, होत हिये अनुमान।
बिन रोदा की है धरीं, मानहुं मैन कमान ॥
भालबिंदु–लाल सुवेंदी भाल तकि, जग जानी यह रीति।
तेरे शीश प्रतीत कै, बसी मीत की प्रीति ॥
नीको लसत ललाट पर, टीको जटित जराय।
छविहिं बढावत रवि मनो, शशि मडल में आय ॥
मुखमंडल–लजत चन्द आनन निरखि, खिजत सदा अरविंद।
मुख सुखमा किहि विधि कहो, हिय जानत गोविंद॥
केश—सटकारे कारे सुभग, घुघुरारे सुकुमार।
मतवारे रसिकन करत, नेही तिय तुव वार ॥
वेणी—है तिय वेणी रावरी, कारी नागिनि रूप।
भेद इतो याके डसें, यहि लखि जहर अनूप ॥

छप्पय।

सर्वांग—रतन मयी नर नारि रमा सम सुन्दर कहिये।
घूंघट हय भ्रू धनुष अमिय त्रिप मद चख पईये ॥
मुख शशि ग्रीवा कम्बु सदा सुखदा सुरतरुसी।
रम्भासी सुकुमारि चतुर अति धन्वन्तरसी ॥
गज गामिनि धनि लेखिये सुरभी सम शुचि शोभातन।
विष्णु वृथा वारिधि मथ्यो तिय तन में चौदह रतन ॥
श्वासवास–तैन रग ते सुख लहत, नासा वास तरग।

अगदीप्ति-देह दीप्ति छवि गेह की, किहि विधि वरणी जाय।
जा लखि चपला गगन तें, छिति पटकत सिर आय॥

गति—चित चाह अबूझ कहैं कितने छवि छीनी गयन्दन की टटकी। कवि केते कहैं निज बुद्धि उटै यह लीनी मरालन की मटकी॥ द्विज देवजू ऐसे कुतर्कन में सब की मति योंहि फिरै भटकी। वह मन्द चले किन भोरी भटू पग लाखन की अँखिया अटकी॥

सोरह शृंगार-प्रथम सकल शुचि मज्जन अमलवास जावक सुदेस केशपास को सुधारिबो। अंग राग भूषण विविध मुख वास राग कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो॥ बोलनि हँसनि चित चातुरी चलनि चारु- पल पल प्रति पतिव्रत प्रति पारिवो। केशोदास सविलास कहत प्रवीनराय यहि विधि सोरह सिंगारह सिंगारिबो॥

शुचिता शील सनेह गति, चितवन बोलनि हाँसि।
कच गूथन औवन्त शुभ, भाल तिलक सुख रासि॥
भाल तिलक सुखरास दृगन अंजन अति सोहै।
बीरी बदन सुदेस चिबुक मम्मकन मन मोहै॥
या विधि मिहदी अंग राग भगवत मन रुचिता।
ये सोरह सिंगार मुख्य तामें बर शुचिता॥

बारह भूषण—नूपुर बिछिया किंकिणी, नीवी बन्धन सोय।
कर मुँदरी कंकण वलय, बाजूबंद भुज दोय॥
बाजूबंद भुज दोय कंठ श्री दुलरी राजे।
नासा बेसर सुभग श्रवण ताटंक बिराजे॥
भगवत बेंदा भाल माग मोती गुह ऊपर।
द्वादश भूषण अंग नित्य प्यारी पग नूपुर॥

## द्वितीय कर्म शिक्षा।

सखि विलास सिख देन को, शिक्षा कहँ कवि मोर।
मुख जनि खोलै तू सखी, लैहै घेर चकोर॥ यथा—

वहत लाज बूडत सुमन, भ्रमत नैन तिहि ठाव।
नेह नदी की धार में, तू न दीजियो पाव॥

तृतीय कर्म उपालम्भ ।

उपालम्भ दम्पति विषय, सखि जु उरहनो देय ।
अबला पै चक्र करत हौ, ह्वैकर पुरुष अजेय ॥ यथा—

कौन भांति आये निरखि, तुम तिहिं नन्दकिशोर ।
भरभराति भामिनि परी, घनघराति घन घोर ॥

चतुर्थ कर्म परिहास ।

सोइ कृत्य परिहास तिय, जासों होय निहाल ।
पिय पगरी सखि सिर धरे, आइ सामुहे बाल ॥ यथा—

को तेरो यह सांवरो, यों बूझ्यो भाजि आय ।
मुख तें कही न बात कछु, रही सुमुरि मुख नाय ॥

दूती ।

जतन कराहि सुविचार, जो तिय पिय संयोग हित ।
नाम कियो निरधार, तिहि को दूती सुकवि जन ॥
इक मृदु कछु मृदु दूसरी, कुपित तीसरी बैन ।
बोलहि यासों तीन विधि, क्रिय दूती मति ऐन ॥
एक उत्तमा दूसरी, दूती मध्यम होत ।
अधमा तीजी काज सों, बरणत कवि के गोत ॥

उत्तमा दूती ।

दूती वर हित वचन कहि, दम्पति देय मिलाय ।
दामिनि घन सों मिलत अलि, तु पिय सों मिल जाय॥ यथा

काल्हि कालिन्द्री के निकट, निरखि आय हों जाहिं ।
आई खेलन फाग यह, तुमहीं मों चित चाहिं ॥

मध्यमा दूती ।

मध्यम दूती हित अहित, कहत सिखाई बात ।
रूप चांदनी चार दिन, फेर अँधेरी रात ॥ यथा—

### अधमा दूती।

अधमा दूती साधती, कुपित वचन कर काज।
री चकोर मरिहै कहा ? जो न उये द्विजराज॥

### दूती कर्म।

बिनती नुति निंदा बिरह, अरु प्रबोध संयोग।
इक इक दूती के कहे, षट कारज कवि लोग॥

उत्तमा विनय–विनय सोइ जहँ बिनय किय, है दूती को काज।
मन जिनको तुम हर चुकीं, सो आये ब्रजराज॥

मध्यमा विनय–जाहि बचायो मेह तें, करि गिरवर की छांहि।
ताहि श्याम जिन जारियो, बिरहानल भरि मांहि॥

अधमा विनय–जो न मानहो लाल तो, फिर का परी बलाय।
स्वइ भोजन रूखे करहि, जिहि गोरस ढरकाय॥

### नुति (स्तुति)

अस्तुति सों अस्तुति किये, करै दूतिका काम।
तो तन छवि आलि दामिनी, हरि तन सम घनश्याम॥

उत्तमा स्तुति–तिनके रूप अनूप की, किहि विधि कहिये बात।
जिन मोहन छवि मन धरे, मन मोह्यो सो जात॥

मध्यमा स्तुति–निज तन जल शायी कहानि, करि समुद्र आगार।
तिन को मन पावत नहीं, तुव तन पानिप पार॥

अधमा स्तुति–कसकि कसकि पूछत कहा, चसकि मसकि अनुमान।
खसकि जायगी ठसकि यह, नेक ससकि सुन कान॥

### निन्दा।

निन्दा सों दूती करत, सोई निन्दा काम।
गोरी भोरी बाल कहँ, कहँ चलाक तुम श्याम॥

निन्दा–आउ डरहु जनि देखिके, फाग रची ब्रजबाल।
कों कमरी पै डारिहै ? केसर रँग नँदलाल॥

मिलन चहत यह रूपसी, राधाजू के साथ ॥
अधमा निन्दा-कहा आपने रूप की, करत बड़ाई हाल ।
तोहू ते अति आगरीं, नगर नागरी बाल ॥

## बिरह निवेदन ।

बिरह कथन तिय पिय बिरह, दूती कह समुझाय ।
नेह नीर बिन बाम वह, क्यों जीवे यदुराय ॥

आपुस में हमको तुमको लखि जो मन आवत सो कहती हैं ।
बेतें चवाव भरी सुनिकै रिस लागत पै चुप ह्वै रहती हैं ॥
ये अगहाई लुगाइ सबै निसि द्योस नेवाज हमै दहती हैं ।
प्रान पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती हैं ॥

उत्तमा—जब ते आई तड़ितलों, नीलाम्बर में कौंधि ।
तब ते हरि चकित भये, लगी चखनि चकचौंधि ॥
मध्यमा—कहा कहो वाकी दशा, जय खग बोलत राति ।
पीय सुनतिही जियति है, कहा सुनति मरि जाति ॥
अधमा—मोहि कह्यो कहिये उतै, बनमाली को पाय ।
नवल बेलिसी बाल वा, दिन प्रति सूखी जाय ॥

## प्रबोध ।

वह प्रबोध क्रिय बोध हो, दूती कृत निरधार ।
है हरि हरे नवाइयो, बाल चम्प की डार ॥

उत्तमा प्रबोध–अब कीजे अनयास यह, बन्यो ब्योंत अनयास ।
तेरे भीतर कन्त के, होऊ अटा सुपास ॥
मध्यमा प्रबोध–हरि चिंता नहिं कीजिये, अपने मन में ल्याइ ।
या होरी के खेल में, गोरी मिलि है आय ॥
अधमा प्रबोध–के गुमान गुण रूप के, तैं न ठान गुन मान ।
मनमोहन चित चढ़ि रही, तोसीं किती न आन ॥

उत्तमा संघट्टन–गोरी और गुपाल कों, होरी के मिस ल्याय।
विजन सांकरी खोरि मे, दोऊ दिये मिलाय॥

मध्यमा संघट्टन–रमनी रमन मिलाय यौ, दूती रहति दुराय।
घन दामिनि को जोरिकै, ज्यौ समीर रहि जाय॥

अधमा संघट्टन–छल सो बल सो रावरे, किहु विधि ल्याइ मनाय।
मिलो वेगि चलि नतरु फिर, जाने मोरि बलाय॥

## स्वयं दूतिका।

स्वयं दूतिका दूतपन, करहि जु अपने काज।
मग दुर्गम कारी निशा, पथिक बसहु इत आज॥ यथा–

मोही सो किन भेंट ले, जौलौं मिले न वाम।
शीत भीत तेरो हियो, मेरो हियो हमाम॥

---

# अथ उद्दीपन विभावांतर्गत षट् ऋतु वर्णन।

गर्मी वर्षा और शीत के क्रमानुसार प्रत्येक वर्ष के छै विभाग होते हैं जिन्हें ऋतु कहते हैं। यथा बारा महीने और षड्ऋतु–

चैत विशाख बसतहि जानो, जेठ असाढ जु ग्रीषम मानो।
सावन भादो बरषा होई, क्वांर कारतिक शरदहुँ सोई॥
अगहन पूस हिमन्त कहीजे, माघ फाल्गुन शिशिर गनीजे।
गर्मी वषा जाडो होई, चौ चो मास केर पुनि सोई॥

| | | |
|---|---|---|
| (१) वसन्त (ऋतुराज) | मास | चैत्र और वैशाख |
| (२) ग्रीषम (गर्मी) | ,, | जेठ और असाढ |
| (३) वर्षा (पावस) | ,, | श्रावण और भाद्रपद |
| (४) शरद | ,, | आश्विन और कारतिक |
| (५) हेमन्त | ,, | मार्गशीर्ष और पौष |
| (६) शिशिर | ,, | माघ और फाल्गुन |

## वसंत ऋतु।

कूकि उठीं कोकिलान गूंजि उठी औंर भौर डोलि उठै सौरभ सरसावते। फूलि उठीं लतिकाहू लोगन की लोनी लोनी भूमि

उठा डालिया कदम्ब सरसावने ॥ चटकि चकोर उठे कीर करि सोर उठे हरि उठीं सारिका विनोद उपजावने । चटकि गुलाब उठे लटकि सरोज पुंज खटकि मराल रितुराज सुनि आवने ॥

अवनि तें, अम्बर तें द्रुमनि दिगम्बर तें अपर अडम्बर ते सखि सरसो परे । कोकिला की कूकन तें हियन की हूकन तें अतन भभूकन तें, तन तरसो परे ॥ कहत किशोर कल पुंजन तें कुंजन ते मंजु अलि गुंजन तें देखो दरसो परे । वसन तें वासन तें सुमन सुवासन ते वेहर तें वन ते वसन्त बरसो परे ॥

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त है । कहै पदमाकर परागहू में पौनहू में पातिन में पीकन पलासन पगन्त है ॥ द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में देखो दीप दीपन में दीपति दिगन्त है । बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगर्यो वसन्त है ॥

मिलि माधवी आदिक फूल के व्याज विनोद लवा बरसायो करैं ।
रचि नाच लतागन तानि विताल सबै निधि चित्त चुरायो करैं ॥
द्विज देव ज्यु देखि अनोखी प्रभा अलि चारन कीरति गायो करैं ।
चिरजीवो वसन्त सदा द्विज देव प्रसूनन की झरि लायो करैं ॥

मदमाती रसाल की डारन पै चढि आनँद सों यो विराजति है ।
कुल जानकी कान करैं न कछू मन हाथ परायहि पारति है ॥
कोऊ कैसी करै द्विज तूहि कहै नहिं नेकौ दया उर धारति है ।
अरि कैलिया कूक करे जन की किरचै किरचै किये डारति है ॥

इहि मधु ऋतु मे कौन के, बढत न मोद अनन्त ।

डरो ना अहीरन सो अतर अबीरन सों चार जनी चार चार औरन तें धावोरी। एक हाथ ओडो पिचकारी की अपार मार एक हाथ ओट चोट आंखिन बचावोरी॥ कवि सरदार आयो बडो खेलवार ताहि खेल को सवाद अंग अंगन बतावोरी। कीरति कुमारी कहैं हेरि के कुमारि कोऊ हौरी गुनवारी वनवारी बांधि लावोरी॥

एकै सग हाल नंदलाल औ गुलाल दोऊ दगन गये तें भरि आनद मदे नहीं। धोय धोय हारी पदमाकर तिहारी सौंह अब तो उपाय एकौ चित्त में चढे नहीं॥ कैसी करौं कहा जाऊं कासो कहौं कौन सुनै कोऊ तो निकासो जासों दरद बढे नहीं। एरी मेरी बीर जैसे तैसे इन आंखिन तें कढिगो अबीर पै अहीर को कढे नहीं॥

उतते कन्हाई लरिकाई सखा लीन्हें संग करि चतुराई केलि होरी की मचाई है। इत वृषभान की कुमारी सुकुमारी प्यारी आलीगन आली मे रसाली सी सुहाई है॥ लालन गुलालन की लालन पै डारें मूठि चलै पिचकारी सुखकारी दुहुं घाई है। केसर सुरगसाने नेह सरसाने डारें मानो बरसाने बरसाने झरि लाई है॥

फेला फेल झोरिन की मूठिन की मेला मेल रेला रेल रग की उमग सरसत है। कहैं पदमाकर गवैयन की पेल परी गैल गैल फैल फैल फाग परसत है॥ धूम धधकोयनकी धधकी वजत तामैं ऐसो अति ऊधम अनोखो दरसत है। ग्वाल पर ग्वाल तेहि ग्वाल पर नन्दलाल लाल नन्दलाल पै गुलाल बरसत है॥

ऐसी न देखी सुनी सजनी धनि वाढति जाति वियोग की वाधा।
त्यों पदमाकर मोहन को तब तें कलहै न कछू पल आधा॥
लाल गुलाल घलाघलि मे दृग ठोकर दै गई रूप अगाधा।
कैगई कैगई चेटक सी मन लैगई लैगई लैगई राधा॥

भाल पै लाल गुलाल गुलाल सो गेरि गरे गजरा अलवेलो।
यो बनि बानिक सो पदमाकर आये जु खेलन फाग तो खेलो॥
पै इक या छवि देखिबे के लिये मो बिनती कै न झोरिन झेलो।
रावरे रग रँगी अँखियान मेँ ए बलबीर अबीर न मेलो॥

रस भिजये दोऊ दुहुँन, तउ टिक रहे टरैं न।
छवि सों छिरकत प्रेम रँग, भरि पिचकारी नैन॥

## ग्रीष्म ऋतु।

जीवन को भास कर ज्वाला को प्रकास कर भोरही तें भास कर आत्मभान छायो है। धमक धमक धूप सूखत तलाय कूप पौन को न गौन भौन आगि में तचायो है॥ तकि थकि रहे जकि सकल विहाल हाल ग्रीषम अचर चर अचर सतायो है। मेरे जान काहू वृषभान जग मोचन का तीसरे त्रिलोचन को लोचन खुलायो है॥

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन मन मांह।
निरखि दुपहरी जेठ की छाहौं चाहत छाह॥

## पावस (वर्षा) ऋतु।

चातक चिहुक मत मुरवा कुहुक मत झिंगुर झिहुक मत भेकी मन नाय मत। चकवा चिकार मत पपिहा पुकार मत बुन्द झर धार मत धार धहराय मत॥ कृष्णलाल गाय मत पीर उपजाय मत बालम बिदेस पाय मैन तन ताय मत। पौन फहराय मत चपला चवाय मत भाय मत धुरवा औ घन घहराय मत॥

आई ऋतु पावस न आये प्राण प्यारे यातें मेघन बरज आली गरजन लावैना। दादुर हटकि बकि बकिकै न फोरे कान पिकन पटकि मोहि सबद सुनावैना॥ विरह निथारे हौ तो ब्याकुल भई हो देव चपला चमकि चित चिनगी उड़ावैना। चातक न गावें मोर सोर न मचावें घन घुमड़ि न छावें जौलों लाल,घर आवेना॥

कैधो वही देश जहँ प्रीतम पियारे बसें घोर घटा नहि घूमि घूमि घहरावै है। कैधौं चमकत नहिं चपला चहूँ धा तहा कैधौंना सुरेश कबौं बुन्द झर लावै है॥ कैधौं काम कुटिल न व्यापत करेजे कैधो कोऊ नहीं मेघ औ मलार राग गावै है। कैधौं लाल पावस की रात मे पपीहा पापी वार बार पीपी कर कूकना सुनावै है॥

कर कागद लेके वियोगिनि नारि लिखे इमि प्रीतम को पतिया।
यहि पावस मे परदेस छये बलिहारि तुम्हारी सिला छतियां॥
सखिया पिय संग हिंडोरे चढी कहँ गीत मे गर्व भरी बतिया।
अतिकारी डरावनी सापिनसी माहि लागत सावन की रतिया॥

ता समैं मोहन के दृग दूरिते आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूंघट टार दया करि दामिनी दीप दिखावै॥

पावस घन अँधियार मे, रहो भेद नहिं आन।
राति द्यौस जान्यौ परे, लखि चकई चक्रवान॥

## अथ पावस ऋतु अन्तर्गत।

## हिंडोरा।

भौंरन को गुंजिवो विहार वन कुंजन मे मंजुल मलारन का गावनो लगत है। कहै पदमाकर गुमानहु मे मानहू मे प्राणहुतें प्यारो मन भावनो लगत है॥ मोरन को सोर घन घोर चहुँ ओरन हिंडोरन की वृन्द छवि छावनो लगत है। नेह सरसावन में मेह बरसावन मे सावन मे झूलिवो सुहावन लगत है॥

सावन तीज सुहावन को सजि सोहैं दुकूल सबै सुख साधा।
त्यो पदमाकर देखे बनै कहते न बनै अनुराग अगाधा॥
प्रेम के हेम हिंडोरन मे सरसै वरसैं रस रंग अगाधा।
राधिका के हिय झूलत सावरो सावरे के हिय झूलत राधा॥

हरि हिंडोरे गगन तें, परी परीसो टूटि।
धरी धाय प्रिय वीचही, करी खरी रस लूटि॥

## शरद ऋतु।

भूल्यो गति मति चन्द चलत न यके पैंड प्यारे मुरलीधर मधुर कल गान की। फूली कुसुमावलि विविध नव कुंजन मे सौरभ सुगंधताई जात ना वखान की॥ वाजत मृदंग ताल झांझ मुरचंग बीन उठत सँगीत जहा अति गति तान की। आज रस रास मे अनूप रूप दोऊ नचैं नन्दलाल लाडिली किशोरी वृषभान की॥

खनक चुरीन की त्यो ठनक मृदंगन की रुनुक झुनुक सुर नूपुर के जाल की। कहै पदमकार त्यौ वासुरी की धुनि मिलि रही बँधि रास सनाकी एक ताल की॥ देखत बनत पै न कहत बनैरी कछू विविध त्यो हुलास यह ख्याल की। चन्द छवि रास चांदनी को परगास की मन्द हास रासमंडल गोपाल की॥

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै वृन्दावन वीथिन बहार
सी बरपै। कहैं पदमाकर अखण्ड रास मण्डल पै मण्डित उमण्डि महा
कालिन्दी के तटपै ॥ छितिपर छानपर छाजत छतानपर ललित लतानपर
लाडली के लट पै। आई भले छाई यह शरद जुन्हाई जिहि पाई छवि
आजुही कन्हाई के मुकुट पै ॥

षोडस हजार बाल षोडश शृंगार साजि षोडश वरस बैस मुदित
बिहार है। बाहुन सों बाहु जोरि मोरि मोरि अंगन सों कीन्हों महा मंडल
अखंडल अपार है ॥ कहैं नंदराम तैसे तार औ सितार मिलि चुरी खनकार
र पञ्चम उचार है। झूलत दिशान विदिशान आसमान हू लौं छम छम
ई घुँघरू की झनकार है ॥

सीत समै परदेस को पीय पयान सुन्यौ वह रोवन लागी।
या रितु में हरि क्योंह रहैं घर देवता पूजि मनावन लागी ॥
और उपाय तज्यो न कछू तब भाजि के बीन बजावन लागी।
प्यारी प्रवीण भरे स्वर मेघ मलार अलापि कै गावन लागी ॥

## हेमन्त ऋतु।

बरसै तुसार बहैं सीतल समीर नीर कम्पमान उर क्योंहू धीर
धरत है। राति न सिराति सरसाति व्यथा बिरह की मदन अराति
जोर जोबन करत है ॥ सेनापति स्याम हो अधीन हो तिहारी सोह मिले
बिन मिले सीत पार न परत है। और की कहा है सविताह्न सीत रितु
जानि सीत को सतायो धन रासि में रहत है ॥

सुन्दर मंदिर अन्दर में बहु बन्दनवार वितान अडोलै।
है परदा मखतूलन के तिहि मूल बिछी गिलमे गुल गोलै ॥
वल्लभ दीपत दीपत है मनि त्यों सुक सारिका के गन बोलै।
परी हिमन्त में राधिका श्याम करै बहु रंग उमंग कलोलै ॥

आवत जात न जानियत, तेजहि तजि सियरान।
घरहि जमाई लौं घस्यो, खस्यो पूस दिनमान ॥

कसाला तिन्हें जिनके अधीन पेते उदित मसाला हैं। ताक तुक ताल हैं विनोद के रसाला हैं सुवाला हैं दुशालाहैं विशाला चित्रसाला हैं॥

लगत सुभग शीतल किरण, निशि सुख दिन अवगाहि।
माघ शशी भ्रम सूर त्यों, रहति चकोरी चाहि॥

## पवन।

पवन तीन विधि जानिये, शीतल मंद सुगंध।

पवन तीन प्रकार की होती हैं, अर्थात् (१) शीतल, (२) मन्द (३) सुगन्ध।

### शीतल।

अम्बु परसिकर वहति जो, सोई शीतल पौन।

जल स्पर्श करती हुई जो पवन चलती है उसे शीतल पवन कहते हैं।

### मन्द।

बहै रुकै पुनि बहि चलै, सो है मन्द समीर।

ठहर ठहर कर धीमी गति से चलने वाली पवन को मन्द पवन कहते हैं।

### सुगन्ध।

कुसुम परसिकै चलति जो, तौन सुगन्धित पौन।

## वन।

स्वाभाविक बहु वृक्षयुत, वन भाषत कवि वृन्द।

## उपवन।

कृत्रिम वन उपवन अहै, जाहि कहत आराम।

## चन्द्र।

शशि उपमा जउ तिय बदन, तउ विरहिनि दुख देत।

## चांदनी, पुष्प, पराग।

चांदनि पुष्प पराग में, उद्दीपन परतच्छ।

---

इति उद्दीपन विभाव चौथा भाग समाप्त।

## अनुभाव (कार्य्य)।

जिनहीं तें रति भाव को, चित में अनुभव होत।
ते अनुभाव सिंगार के, वरणत हैं कवि गोत॥
सात्विकभाव स्वभाव धृत, आनँद अंग विकास।
इनहीं तें रतिभाव को, परकट होत विलास॥

भा०-जिन क्रियाओं से रसास्वाद का अनुभव अर्थात् अनुमान हो उनको अनुभाव कहते हैं। इसके तीन भेद हैं, १ सात्विक, २ कायिक ३ मानसिक।

### १ सात्विअनुभाव।

सहजहिं अंग विकार कहँ, सात्विक भाव बखान।
ताके पुनि नव भेद गुनि, बरणत है मतिमान॥

भा०-शरीर के सहज अंग विकार को सात्विक भाव कहते हैं, इनके ६ भेद ये हैं।

स्तम्भ स्वेद रोमांच कहि, बहुरि कहत स्वर भंग।
कम्प वराणि वैवर्ण्य पुनि, आंसु प्रलय प्रसंग॥
अन्तरगत अनुभाव में, आठहु सात्विक भाव।
जृम्भा नवम बखानहीं, कोऊ कवि सतभाव॥

भा०-१ स्तम्भ २ स्वेद ३ रोमाच ४ स्वरभंग ५ कम्प ६ विवर्ण ७ अश्रु ८ प्रलय और ६ जृम्भा।

### (स्तम्भ)

हरप लाज भय आदि तें, अङ्ग थकित अस्तम्भ।
पियहिं निरखि तिय थाकि रही, भूलि मान अरु दम्भ॥

भा०-हर्ष, लाज, भय, श्रम और व्याधि इत्यादि कारणों से सम्पूर्ण अवयवों (अंगो) की गति के अवरोध (थकित) हो जाने को स्तभ कहते हैं। यथा—

[illegible]

ऐसो नेह को उघरिवो ॥ चित्र कैसे लिखि दोउ ठाढे रहे "काशीराम" नाहीं परवाह लोग लाख करो लरिवो। बंसी को बजैवो नट नागर बिसरि गयो नागरी बिसरि गई गागरी को भरिवो ॥

तु० रा०—रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी।
भये विलोचन चारु अचंचल ॥

## ( स्वेद )

रोष लाज हर्षादि तें, अंग सलिल स्वइ स्वेद।
श्रम सीकर मुख कमल में, लाज हर्ष संभेद ॥

भा०—रोष अर्थात् क्रोध, लाज, भय, हर्षादि से अंग प्रत्यंग में जल (पसीना) प्रकाशित (झलकं) होने को स्वेद कहते हैं। (बोझ उठाने वा लादने से जो पसीना निकले उससे सम्बन्ध नहीं)

तु० रा०—श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुण तन श्रोनित कनी।

## ( रोमांच )

शीत भीति हर्षादि तें, रोमांचित है जात।
उठे अँकुरे प्रेम के, पुलकित गात अन्हात ॥

भा०—शीत, भय और हर्षादि के कारण शरीर में रोम उठ आने को रोमांच कहते हैं। यथा—

कैधौ डरी तू खरी जल जन्तु तें कै अंग भार सिवार भयो है।
कै नख तें सिख लो पदमाकर जाहिरै भार शृंगार भयो है ॥
कैधौ कछू तोहिं शीत विकार है ताहि को या उदगार भयो है।
कैधौ सुवारि विहारहि में तनु तेरो कदम्ब को हार भयो है ॥

पुलकितगात अन्हात यो, अरी खरी छवि देत।
उठे अकुरे प्रेम के, मनहुँ हेम के खेत ॥

तु० रा०—श्यामलगात रोम भये ठाढे।

## ( स्वरभंग )

हरष भीति मद क्रोध ते, जहां होत स्वर भंग।
सूधे वचन न कहि सके, कामिनि पुलकित अंग ॥

भा०—हर्ष, भय, मद और क्रोधादि से स्वाभाविक वाक्य ध्वनिका
पर्य्यय होना ( बदल जाना ) स्वरभंग कहलाता है। यथा—

तु० रा०—पुलकित तनु मुख आव न बचना।

### कंप (वेपथु)

हरष, कोप, भ्रम, भय सहित, जहँ कंपित सब गात।
अब बचिहैं किमि प्राण ये, बिरह अनल तें तात॥

भा०—हर्ष, क्रोध, भ्रम, भय आदि के कारण अकस्मात् शरीरा-
ङ्ग के चलायमान (थरथराने) को कंप कहते हैं। यथा—

तु० रा०—थर थर कंपहिं पुर नर नारी।

### (वैवर्ण्य)

भय क्रोधादिक तें जहा, हो बिवर्ण्य गति चैन।
श्रीहत भूपति भे सबै, धनुष भंग लखि नैन॥

भा०—मोह, क्रोध और भय आदि से शरीर की कांति के परि
र को वैवर्ण्य कहते हैं। यथा—

कठिन सकत कछु लाज तें, अकथ आपनी बात।
ज्यों ज्यों निशि नियरात है, त्यों त्यों तिय पिय रात॥

तु० रा०—श्रीहत भये भूप धनु टूटे।

### (अश्रु)

हर्ष शोक भय आदि तें, अश्रु चलत ठहरैन।
तासु दशा देखी सखिन, पुलकगात जल नैन॥

भा०—हर्ष, क्रोध, शोक, भयादि के कारण नेत्रों से जल प्रवाह
अश्रु कहते हैं।

### (प्रलय)

तन मन की न सँभार जहँ, सोई प्रलय कहात।
कैकेई के बचन सुनि, शिथिल भूप के गात॥

भा०—किसी विषय या किसी वस्तु में तन्मय होकर तन मन की

कैसी भई है दसा इनकी ? तुमहू तौ कहौ सब मैं महती हौ।
मोहन तौ मथुरा को गये भटू ? कौन उपाय करे गहती हौ॥
गोकुल ध्यान धुनी मैं धँसो अब ताहि कहौ किन क्यां लहती
राधे कहे कछु ऊतरु देति न कान्ह कहे कहै का कहती हौ॥

तु० रा०—केहरि कटि पट पीतधर, सुखमा शील निधान।
देखि भानुकुल भूषणहि, विसरा सखिन अपान॥
व्याकुल राउ शिथिल सब गाता॥

(जृम्भा)

पिय वियोग सम्मोह में, आलस (जृम्भा) आय।
लरिका अमित उनींदबस, शयन करावहु जाय॥

भा०—पिय विछोह (वियोग) वा मोह आलस्य के कारण दशा में वदन उभारने को जृम्भा कहते हैं। यथा—

दरदर दौरति सदन दुति, सम सुगन्ध सरसाति।
लखत क्यो न आलस-भरी, परी तिया मुरझाति।

## २ कायिकानुभाव।

तन की कृत्रिम, चेष्टा, सो कायिक अनुभाव।
पिय को केश बताय तिय, इंगित किय निसि आव॥

भा०—आख, भौह, हाथ आदि अगों द्वारा जो चेष्टायें की जाती हैं, उन्हें कायिक अनुभाव कहते हैं। यथा—नायक को देखकर ... मे बैठी हुई नायिका ने अपने काले केश दिखलाकर यह इशारा ... कि रात को आव-इसी को बोधक क्रिया कहते हैं। यथा—

श्याम सैन तिय नैन तकि, निसरि भौर तें आय।
अधर आंगुरी धरि चलीं, चित की चाह विताय॥
अस कहि पुनि चितये तिहि ओरा।

## ३ मानसिकानुभाव।

मन संभव मोदादि कहँ, कहिय मानसिक भाव।
छला छीनि तोन्यो हरा, तऊ मिलन को चाव॥

भा०—मन छन प्रमोदादिक अनुभाव को मानसिक अनुभाव कहते हैं। यथा—क्रीड़ा करते समय श्रीकृष्ण ने नायिका की ...

छल्ला छीन लिया ओर मोतियों का हार भी तोड डाला तोभी उसके हृदय में मिलने की उत्कंठा बनी ही है।

गोरस को लूटिवो न छोरिवो छरा को गने टूटिवो गने न कहू मोतिन के माल को। कहै पदमाकर गुवालिनि गुनीली हरि हरखै हँसैयो हरैं भूंठे मूंठे ख्याल को॥ हां करति ना करति नेह की निशा करति वाकरी गली में रंग राखति रसाल को। दीवो दधि दान को सुकैसे याहि भावत है जाहि मन भायो झार झगरो गुपाल को॥

शरद पूर्णिमा यमुन तट, रास रच्यो नन्दलाल।
मोद अलौकिक की छटा, इक जानत ब्रजवाल॥

दैरिह सिया शोभा सुख पावा॥

## कायिक तथा मासिक अनुभावान्तर्गत।

## द्वादशहाव।-

अनुभावहिं में जानिये, लीलादिक जे हाव।
ते सँयोग शृगार में, वरणहिं सब कवि राय॥
प्रगट स्वभाव तियान के, निज सिंगार के काज।
हाव जानिये ते सबै, यों भाषत कविराज॥
लीला विहृत विलास पुनि, ललित विच्छित्ती जान।
विभ्रम किल किंचित वहुरि, हाव कुट्टमित मान॥
विब्बोकरु मोटाइनहुं, है दस हाव प्रसिद्ध।
हेला बोधक हावहू, कहत जु हैं रस सिद्ध॥

भाषाभूषण में दस हाव वर्णन किये हैं, अन्य ग्रन्थों में दो हाव ओर मिलते हैं। यथा—भाषाभूषण

प्रिय प्यारी रति सुख करै, लीलाहाव सुजानि।
बोलि सकै नहि लाजते, विहृत हाव बखानि॥
चितवनि बोलनि चलनि में, रस की रीति विलास।

१०८ विच्छित्ति काहू वेर में, भूषण अलप सुहाय ।
रस सों भूषण भूलिकै, पहिरे विभ्रम हाय ॥
क्रोध हर्ष अभिलाष भय, किल किंचित में होय ।
प्रगट करै दुख सुख समै, हाव कुट्टमित सोय ॥
प्रगट करै रिस पीय सों, बात न भावै कान ।
आये आदर ना करै, धरि बिब्बोक गुमान ॥
पिय की बातन मैं चलैं, तिय अँगराइ जँभाय ।
मोटाइत सो जानिये, कहैं महा कविराय ॥
हेलाहू सभोग में, जहँ हो विविध विलास ।
बोधक इंगित कोउ कहैं, सो कायिक में भास ॥

अब इनके लक्षण और उदाहरण पृथक पृथक लिखते हैं—

(१) लीलाहाव ।

लीला भूषण बसन सजि, इक के एक बिसाल ।
कृष्ण बने श्री राधिका, राधे श्री नँदलाल ॥ यथा—

ये इत घूघट घालि चलैं उत बाजत बासुरी की धुनि खोलैं ।
त्यो पदमाकर ये इते गोरस लै निकसैं यो चुकावत मोलैं ॥
प्रेम के पथ छु प्रीति की पैंठ मे पैठत ही है, दशा यह जोलैं ।
राधामई भई श्याम की सूरति श्याम मई भई राधिका डोलैं ॥

तिय बैठी पिय को पहिरि, भूषण बसन विशाल ।
समुभि परत नहिं सखिन कमे, को तिय को नँदलाल ॥

सूचना—लीलाहाव और आहार्य्य मे थोडाही अन्तर है, जहां प्रिया और प्रीतम दोनो एक साथही रूप पलटते हैं वहा लीलाहाव जानिये और जहां उनमे से केवल एकही रूप पलटे वहा आहार्य्य हाव जानिये कतिपय कवियो ने आहार्य्य को अनुभाव का एक उपभेद माना है । यथा—

गुच्छा विच विच कुसुम कली के ।

## आहार्य्य का उदाहरण ।

श्याम रंग धारि पुनि बाँसुरी सुधारि कर पीत पट धारि बाणी सुनावेगी । जरकसी पाग अनुराग भरे शीश बाधि कुंडल किरीटहू नि दरसावेगी ॥ याही हेत सरी अरी हेरति हों बाट वाकी कैयों पहु को श्रीउर भुरावेगी । सकल समाज पहिचानेगो न केहु भांति वह बाल ब्रजराज बनि आवेगी ॥

## (२) विहृतहाव ।

विहृत पिया के मिलतहू, बोलति नहिं बस लाज ।
लाज बसहिं चुप ह्वै रही, मिलत आज ब्रजराज ॥ यथा–

सीस कहै परि पाय रहौं, भुज यो कहैं अंक तैं जानन दीजै ।
जीह कहै बतियाँहि कियो करों, श्रौन कहैं उनही की सुनीजै॥
नैन कहैं छवि सिंधु सुधारस हौं, निसि वासर पान करीजे ।
पायहु प्रीतम चित्तन चैन, यों भावतो एक कहा कहा कीजै॥

## (३) विलास ।

रिझावती पिय भावती, करि करि बिबिध विलास ।
मनमोहन मनहरण को, मंद मंद किय हास ॥ यथा–

समुझि श्याम को सामुहे, करते वार सगार ।
मनमोहन मन हरण को, लगी करन शृंगार ॥

(५) विच्छिति।

विच्छिवि थोरइ बनक में तरुणि महा छवि देत।
एकहि मृग मद बिंदु सों, मन हरि को हरि लेत॥ यथा—
बेंदी भाल तमोल मुख, सीस सिलसिलेवार।
दृग आंजे राजेश्वरी, साजे सहज सिंगार॥

(६) विभ्रमहाव।

विभ्रम भूषण भूलि कै, उलट पलट कहुँ धार।
पहिरि कंठ बिच किंकिणी, कस्यो कमर बिच हार॥
दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दर वेद युवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारत जानकी कंकण के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

(७) किलकिंचित।

रोष हास भय रस इकत, सो किलकिंचित रीति।
चढ़त भौंह धरकत हियो, हँसति जनावति भीति॥

(८) कुट्टमितहाव।

मिथ्या रोंष जनावती, सो कुट्टमित कहात।
करि करि नाहीं थकि रही, पिया न मानी बात॥
कर ऐंचत आवत इँची, तिय आपुहि पिय ओर।
झूठिहुं रूसि रहै छिनक, छुवत छरा को छोर॥

(९) विव्वोकहाव।

विव्वोकहि निज पीय को, करै निरादर बाल।
मैं बेटी वृषभानु की, तुम अहीर के लाल॥ यथा—
ए अहीर वारे तोसो जोरि कर कोरि कोरि विनय सुनायो बलि बासुरी बजावे जनि। बासुरी बजावै तौ बजाव मो बजाय आने बड़ी बड़ी आंखिन तें एकटक लावे जनि॥ लावै है तो लाव टक तोप मोसों कहा काम बेर बेर दौरि दौरि मेरी पौर आवे जनि। आवै है तो आव ...ारचो कचूल्यो पर मोरे गोरे गात मे तू कारो गात छुवावे जनि॥

दानी भये नये मागत दान हो जानि है कंस तो बन्धन जैहो।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन देहो॥
रोकत हो बन मे "रसखानि" चलावत हाथ घनो दुख पैहो।
जैहै जो भूषण काहु तिया को, तो मोल छला को लला न बिकैहो॥

न्हातई न्हात तिहारई स्याम कलिंदियो स्याम भई बहते है।
धोयेहु धोयहो यामे कहू तो यहै रँग सारिन मे सरसै है॥
सांवरे अंग को रंग कहू यह मेरे सु अंगन मैं लगि जैहै।
हौज छबीले छुवोगे जो मोहिं तो गातन मेरे गुराई न रैहै॥

(१०) मोट्टायितहाव।

मोटाइत सुनि पिय कथा, मज्जति अति अनुराग।
दृगनि मूंदि मोहित तिया, भूरि सराहत भाग॥

रूप दुहू को दुहून सुन्यो सु रहै तब ते मनो संग सदाहीं।
ध्यान में दोऊ दुहून लखें हरषें अंग अंग अनंग उछाहीं॥
मोहि रहै कबके यों दुहू पदमाकर और कछू सुधि नाहीं।
मोहन को मन मोहनी में बस्यो मोहनी को मन मोहन माहीं॥

बसी करन जब ते सुन्यो, स्याम तिहारो नाम।
दृगन मूंदि मोहित भई, पुलकि पसीजत बाम॥

(११) हेलाहाव।

करत ढिठाई पीय सों, हेला हाव सुधार।
पारन विधि हरिहर लहैं, तिन सों गुँथवत बार॥

फाग के भीर अहीरन त्यो गहि गोविंदै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मनकी "पदमाकर" ऊपर नाय अबीर की झोरी॥
छीन पितम्बर कम्मर ते सु बिदा दई मीडि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसुक्याय लला फिर आइयो खेलन होरी॥

(१२) बोधकहाव।

बोधकहाव कायिकानुभाव और क्रिया विदग्धा के अन्तर्गत
ेत होता है। इसका वर्णन पहिले हो चुका है।

## संचारीभाव।

थाई भावन को जिते, अभि मुख रहै सिताव।
जे नव रस में संचरैं, ते संचारी भाव॥
थाई भावन में रहत, या विधि प्रगट विलात।
ज्यों तरंग दरियाव में, उठि उठि तितहि समात॥
थिर है थाई भाव तब, परिपूरण रस होत।
थिर न रहत रस राज लौं, संचारिन के गोत॥
थाई संचारीन को, है इतनोई भेद।
ते संचारिन के कहत, तैंतिस नाम निवेद॥

भा०—स्थाईभाव मे जो विद्यमान रहते हैं और सम्पूर्ण नवरसो मे जल की तरग (लहर) की भाति उत्पन्न हो होकर फिर विलात अर्थात् उन्ही में विलीन हो जाते हैं तथा समस्त भावो मे जिनका सचार है वेही सचारीभाव कहलाते है नीचे लिखे अनुसार वे तैंतिस प्रकार के है। ये भाव स्थिर नहीं रहते चचल होते हैं (रसराज=पारा)

कहि निरवेद, ग्लानि, शका, त्यों असूया, श्रम, मद, धृति, आलस, विषाद, मति, मानिये। चिन्ता, मोह, सुपन, विबोध, स्मृति, अमरख, गर्व, उत्सुकता, सु अवहित्थ, ठानिये॥ दीनता, हरष, व्रीडा, उग्रता, सु निद्रा, व्याधि, मरण अपस्मार, आवेगहु, आनिये। त्रास, उन्माद, पुनि जडता, चपलताई तैंतिसों वितर्क, नाम याही विधि जानिये॥

### (१) निर्वेद।

तिरस्कार संसार सों, सो निर्वेद कहात।
सब तजि अब तौ सेइये, माधव पद जल जात॥

भा०—विपत्ति, ईर्षा अथवा किसी खेद के कारण ज्ञान पैद होने से निज शरीर तथा सासारिक सम्पूर्ण अनित्य पदार्थों का तिरस्कार करना निर्वेद भाव है। यथा—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं।

नैनन सों रस खानि कबै ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

भयो न कोऊ होइगो, मो समान मति मन्द।
तजे न अबलौं विषय विष, भजे न दशरथ नन्द॥
तु० रा०-सब परिहरि रघुबीरहिं, भजौ भजहिं जेहि सन्त।
अब प्रभु कृपा करहु इहि भांती।
सब तजि भजन करौं दिन राती॥

(२) ग्लानि।

आधि व्याधि के दुःख सों, उपज ग्लानि मन माहिं।
धिक जीवन या जगत में, जहँ एकहु सुत नाहिं॥

भा०-आधि व्याधि जैसे क्षुधा, तृषा, अथवा रतिश्रमादि के कारण अंग शिथिल होने को ग्लानि कहते हैं, इसकी शिथिलता (विह्वलता) में स्वरभंग तथा कंपादिक भी होता है। यथा—

तु० रा०—भई गलानि मोरे सुत नाहीं।

(३) शंका।

इष्ट हानि दुर्नीति तें, हो मन में अति शोक।
चौथ चांद भादों लखे, लगिहै कहू कलंक॥

भा०-निज दुर्नीति तथा क्रूरता अथवा औरही किसी कारण से इष्ट हानि के शोच को शंका कहते हैं। यथा—

तु० रा०—शिवहिं विलोकि ससंकेउ मारू।

तैसी चेटकनि चेरी ताके चित्त को चहा कियो। राधिका की कहवत कहि दीजो मोहन सों रसिक शिरोमणि कहायश्रौं कहा कियो॥

जैसे को तैसो मिले, तवहीं जुरत सनेह।
ज्यों त्रिभग तन श्याम को, कुटिल कूबरी देह॥

तु० रा०—तव सिय देखि भूप अभिलाखे, कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥

(५) श्रम।

अति गति ते जब काहु के, होवै श्रम गंभीर।
द्वन्द युद्ध देखहु सकल, श्रमित भये अति वीर॥

भा०—मार्ग गमणादि परिश्रम जन्य थकावट से स्वेदादि निकल पुनः तत्कार्य की अनिच्छा को श्रम कहते हैं। यथा—

पुर तें निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दिये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भालकनी जल की पट्ट सूखि गये अधराधर वै॥
फिर बूझति है चलनोऽव कितो पिय पर्ण कुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अखियां अति चारु चलीं जल च्वै॥

श्रमित भूप निद्रा अति आई।
थके नयन रघुपति छवि देखी।

(६) मद।

मद उपजै धन रूप तें; कै यौवन मद पान।
नहीं आजु ससार में, योधा मोहि समान॥

भा०—धन, यौवन, स्वरूप तथा मदिरादि सेवन मे मद उत्पन्न होकर असगत वाक्यो का कहना तथा अनुचित वर्ताव करना मद कहजाता है। यथा—

धन मद यौवन मद महा, प्रभुता को मद पाय।
तापर मद को मद जिन्हें, को त्यहि सकै सिखाय॥

तु० रा०—जग जोधा को मोहि समाना।
रण मद मत्त निशाचर दर्पा।

(७) धृति।

धृति साहस अरु ज्ञान तें, उपजत हिय महँ आय।
एक दिना नहिं एक दिन, दिन फेरहिं रघुराय॥

उपाय एकौ चित्त पै चढ़े नहीं ॥ कैसी करौं कहां जाऊं कासों कहौं कौन सुने कोऊ तो निकासौ जासो दरद बढ़े नहीं। येरी मेरी बीर जैसे तैसे इन आंखिनतें कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़े नहीं ॥

तु० रा०—राम राम रट बिकल भुवालू।
अति विषाद बस लोग लुगाई।

## (१०) मति।

नीति निगम आगमन ते, उपजत सुमति सुचारु।
रसना जो भव तरण चहु, राम नाम उचारु॥

भा०-मिथ्या भ्रम होने पर भी सुनीति ज्ञान का होना मति सचारी है। यथा—

बादही वाद वकी के वकै मति बोर दै धंज बिषै विषही को।
मानिले या पदमाकर की कही जो हित चाहत आपने जीको॥
शम्भु के जीव को जीवन मूरि सदा सुखदायक है सबही को।
रामही राम कहै रसना कसना? तू भजे रस नाम सही को॥

तु० रा०—भयो ज्ञान उपजो नवनेहा।

## (११) चिन्ता।

चिंता चित हो चकित जब, थिरता बिन मति भोर।
चिंता कौनहु भांति की, तात करिय जनि मोर॥

भा०-जहां किसी बात की मन में चिंता होती है उसे ही चिंता कहते हैं। यथा—

भोरहि भुखात हैहैं कंदमूल खात हैहैं द्युति कुम्हिलात हैहैं मुख जल जात को। प्यादे पग जात हैहैं मग, मुरझात हैहैं थकि जैहैं घाम लागे श्याम कृष्ण भरत को॥ पंडित प्रवीण कहै धर्म के धुरीन ऐसे मन में न राख्यो पीन प्रन राख्यो तात को। मातु कहै कोमल कुमार सुकुमार मोर छौना हैहैं मोवन बिछौना करि पात को॥

तु० रा०—चितवत चकित चहूं दिशि सीता।
सुमिरि पिता पन मन अति छोभा।
कहँ गये नृप किशोर मन चीता।

(१२) मोह।

मोह आपने देह को, ज्ञान रहत जब नाहिं।
निर्मोही की प्रीति में, गोपी अति बिलखाहिं॥

भा०—विरह, दुःख, चिंतादिकों से जब अपने शरीर का ज्ञान न रहे उसे मोह सचारी कहते हैं। यथा—

मोहन मोहि रह्यो कब को कब की यह मोहिनी मोहि रही है।

तु० रा०—मुनि अति बिकल मोह मति नाठी।
जीन्ह लाय उर जनक जानकी।

(१३) स्वप्न।

स्वप्न स्वप्न को देखिबो, बरणत हैं कवि लोग।
सपने में हरि मिलि गये, जागे बढ़्यो वियोग॥

भा०—निद्रावस्था में किसी पदार्थ के ज्ञान को स्वप्न संचारी कहते हैं। यथा—

सोवत आजु रही सपने द्विज देव जू आनि मिले बनमाली।
जौलों उठी मिलिबे कहँ धाय सुहाय सुजान सुजान पै धाली॥
बोलि उठे ये पपीहन लौं जगि पीव कहाँ कहि क्रूर कुचाली।
सम्पति सी सपने की भई मिलिबो ब्रजराज को आजु को आली॥

क्यों करि झूठी मानिये, सखि सपने की बात।
जु हरि हर्‌यो सोवत हियो, सो न पाइयत प्रात॥

तु० रा०—दिन प्रति देखहु राति कुसपने।
सपने बानर लंका जारी॥

(१४) विबोध।

विबोध है जागिबो, बरणत मति अवदात।
अनुरागी लागी हिये, जागी बड़े प्रभात॥

भा०—निद्रा की विपरीत अवस्था को विबोध सचारी कहते हैं।

लखन निसि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान।
पहिले जगत पति, जागे राम सुजान॥

विगत निशा रघुनायक जाने।

कै गिनती सी रती गिनती दिन तीनक लौं बहु बार सुनाई।
त्यों पदमाकर ओढ़ मया करि तोहिं दया न दुखान की आई॥
मेरो हरा हुव हार भयो अब नाहि उनारि उन्हें न दिखाई।
ल्याई न तू कबहूँ बनमाल गोपाल की या पहिरी पहिराई॥

मुख मलीन तन छीन छवि, परी सेज पर दीन।
लेत क्यों न सुधि सांवरे, नेही निपट नवीन॥

तु० रा०—आपनि दारुण दीनता, कहेउ सबहि शिर नाइ।
पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं।

## (२१) हर्ष।

हर्ष मिलतही इष्ट के, हियो जात है फूल।
सिय हिय हर्ष न जाय कहि, जानि गौरि अनुकूल॥

भा०—जहां किसी कारण से चित्त को आनन्द प्राप्त हो, आनन्द सूचक पुलकावली तथा प्रस्वेद का होना हर्ष सचारी कहलाता है।

गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगटे प्रभु सुखकंद।
हर्षवत सब जहँहि तहँ, नगर नारि नर वृन्द॥

तु० रा०—हरषि राम भेटेउ हनुमाना।
हर्ष जनु निज निधि पहिचाने॥

## (२२) व्रीड़ा (लाज)

व्रीड़ा कौनहु हेतु तें, रहत लाज उर छाय।
मुख नवाय सकुचाय तिय, रही सु घूंघट नाय॥

भा०—किसी कारण वश लाज (लज्जा) उत्पन्न होने को व्रीड़ा सचारी कहते हैं। यथा—

तु० रा०—गुरजन लाज समाज बडि, देखि सीय सकुचानि।
बहुरि बदन विधु अंचल ढांकी। पिय तन चिते भौंह करि बांकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिनहिं सिय सयननि॥

## (२३) उग्रता।

निरदैपन है उग्रता, नहीं दया को ठाउं।
शिव धनु भंजनहार कहँ, यमपुर अबहि पठाउँ॥

भा०–निर्दयपन अर्थात् हृदय में दया का सचार न होना ही उसका सचारी कहलाता है। यथा—

एक बार कातहु किन होई।

(२४ निद्रा।

शयन कहावंत सोइबो, वहै सुनिद्रा होय।
पिया बाट जोहत तिया, रही पलँग पर सोय॥

भा०–शयन करना (सोना) निद्रा सचारी कहलाता है। यथा-

तु० रा०—ते सिय राम साथरी सोये।

(२५) व्याधि।

व्याधि विरह कामादि तें, तन सतापित छाम।
सुत बिछुरत व्याकुल भये, दशरथ लै कै नाम॥

भा०–विरहवश या कामादि या किसी अन्य व्याधि के कारण रोगादि सचार को व्याधि सचारी कहते हैं। यथा—

दूरही ते देखत में बिथा वा वियोगिनि की आई भले भाजि इलाज मढि आवैगी। कहै पद्माकर सुनो हो घनश्याम जाहि चेत कछु जो एक आहि कढि आवैगी॥ सर सरितान को न सूखत लगैगी देर एती कछु जुलमिन ज्वाल बढि आवैगी। ताके तन तापकी कहौं कहा बात मेरे गातहि छुवो तो तुम्हें ताप चढि आवैगी॥

फब की अजब अजार में, परी वाम तन छाम।
तिल कोऊ मत लीजियो, चन्द्रोदय को नाम॥

तु० रा०—देखी व्याधि असाधि नृप, पर्‍यो धरणि धुनि माथ।
कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ॥
यह कुरोग कर औषधि नाहीं। अति परिताप सीय मन मा

(२६) मरण।

मरनो सूर सतीन को, कहत सुजस के हेत।
सती सुलोचन हो गई, रही कीर्ति अति सेत॥

भा०–शरीर से प्राण वायु के निकल जाने को मरण कहते हैं

जानकी को सुनि आरत नाद सुजानि दशानन की छलहाई।

रावण ऐसे महा रिपु सों अति युद्ध कियो अपने बलसाईं।
सोहत श्री रघुराज के काज पै जीव तजै तो जटायु की नाईं॥

तु० रा०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तन त्यागो दशरथ नृपति, गवने सुरपति धाम॥

## (२७) अपस्मार (मूर्छा)

अपस्मार दुःखादि तें, होत कम्प भूपात।
हरि वियोग तें राधिका, धरणि पछारे खात॥

भा०–दुःखादि सहन करने तथा अन्य किसी कारण से कम्पादि होकर पृथ्वी पर गिरने, मुख से फेन और अधिक स्वासादि निकलने अर्थात् अपस्मार (मृगी) रोग की सदृश अवस्था हो जाने को अपस्मार सचारी कहते हैं। यथा—

लखि विहाल एकै कहत, भई कछू भयभीत।
इकै कहत मिरगी लगी, लगी न जानत प्रीत॥

तु० रा०—अस कहि मूर्छि परेउ महिराऊ।

## (२८) आवेग।

आवेगहि चलि परत झट, भय तें वा अति नेह।
सुनि आहट पिय पगनि तिय, भभरि भगी बिच गेह॥

भा०–अत्यन्त भय वा अधिक स्नेह से आतुरता के साथ उठ चलनाही आवेग सचारी कहलाता है, इसी को सम्भ्रम भी कहते हैं। यथा—

लछमन दीख उमाकृत वेषा। चकित हृदय भ्रम भयउ विशेषा॥
पितु भ्रम समुझि बहुरि मन छोभा।
सुनत श्रवण वारिधि बधाना। दशमुख बोलि उठा अकुलाना॥
बाधेउ वननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु वारीश।
सत्य तोय निधि पकानिधि, उदधि पयोधि नदीश॥

## (२९) त्रास।

त्रास कौनहू अहित तें, उपजत हिय भय आय।
सुनत तिहारी बात नृप, त्रासित शत्रु समुदाय॥

ए व्रजचन्द गोविंद गोपाल सुनो म क्यौं केते कलाम किये मैं।
त्यो पदमाकर आनँद के नँद हो नँद नन्दन जानि लिये मैं॥
माखन चोरी कै खोरिन ह्वे चले भाजि कछू भय मानि जिये मैं।
दूरिहू दौरि दुर्‌यो जो चहो तो दुरो किन मेरे अँधेरे हिये मे॥

तु० रा०—भा निरास उपजी मन त्रासा।
भयउ विलम्ब मातु भय मानी॥

## (३०) उन्माद।

अविचारी आचरण जो, सो उन्माद बखान।
छिन बोलति छिन रोवती, छिन छिन में मुसकान॥

भा०—विना विचारेही आचरण करने को उन्माद कहते हैं। व्यर्थ बकवाद करना, रोना, हँसना आदि उन्माद के स्वाभाविक लक्षण हैं। यथा—

आपहि आप पै रूसि रही कबहू पुनि आपुहि आप मनावै।
त्यो पदमाकर ताकि तमालनि भेंटिबे को कबहू उठि धावै॥
जो हरि रावरो चित्र लखै तो कहू कबहू हँसि हेरि बुलावै।
व्याकुल बाल सु आलिन सो कह्यो चाहे कछू तो कछू कहि आवै॥

छिन रोवति छिन हँसि उठति, छिन बोलति छिन मौन।
छिन छिन पर छीनी परति, भई दशा धौं कौन?॥

तु० रा०—अहह तात दारुण प्रण ठाना।
तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग विधि रचा विचारी॥
लछिमन समुझाये बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाती॥

तु० रा०-लोचन मगु रामहि उर आनी। दीने पलक कपाट सया
बारि बिलोचन बाचत पाती। पुलकगात आई भरि छाती
राम लखन उर कर बर चीठी। रहिगे कहत न खाटी मीठ
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा॥

## (३२) चपलता।

होत चपलता प्रेम तें, थिरता नहिं ठहरात।
चकरी सी सकरी गलिन, छिन आवत छिन जात

भा०-अधिक अनुरागादि के कारण स्थिरता का न
चपलता संचारी है इच्छानुसार आचरण करना इसका मुख्य
है। यथा—

कौतुक एक लख्यो हरि ह्यां पदमाकर यो तुम्हें जाहिर की मैं।
कोऊ अहे घर की ठकुराइनि ठाढी न बात रहै छिनकी मैं॥
झांकति है कबहूं झझरीन झरोखनि त्यों सिरकी सिरकी मैं
झांकतिही खिरकी मे फिरै थिरकी थिरकी खिरकी खिरकी मै

तु० रा०-देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुरबासिन पाये।
धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी
करत मनोरथ आतुर धावा।
प्रभुहि चितय पुनि चितय महि।

## (३३) वितर्क।

उर उपजत सन्देह जब, सो वितर्क हिय भास।
लंका निशिचर की पुरी, इत कत सज्जन बास॥

भा०-किसी प्रकार का विचार करलेही चित्त मे तर्क ( स
उत्पन्न होना वितर्क कहलाता है। यथा—

थोस गुण गौरिकै सु गिरिजा गुसांइन को आवत यहाही
आनन्द इते रहै। कहै पदमाकर प्रतापसिंह महाराज देखों देखि
दिव्य देवता तिते रहै॥ गेल तजि बैल तजि फैल तजि गैलन में हेरत
उमापति हिते रहै। गौरिन मे कौन धों अभागी गुण गौरि
घरी चारक लौं चकृत चिते रहै॥

| | | |
|---|---|---|
| ७ वीभत्स | . | ग्लानि |
| ८ अद्‌भुत | | आश्चर्य |
| ९ शांत | . | शम (निर्वेद) |
| १० वत्सल | | स्नेह |

स्थायीभावो के लक्षणो का सारांश उदाहरण सहित नीचे लिखा जाता है—

## (१) रति।

होत अपूरब प्रीति जहँ, सोई रति सह नेम।
जनकनंदिनी को अचल, रघुपति पद नित प्रेम॥

गूढ और अपूर्व प्रीति को रति कहते हैं रति देवता गुरु मुनि और राजा विषयक भी होती है, कोईर पुत्र विषयक भी कहते हैं सो तो वत्सल के अन्तर्गत है, रति के तीन भेद माने गये हैं। एकांगी (उत्तम) परस्पर (मध्यम) और स्वार्थवश (अधम)।

उत्तम—मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
तुलसी प्रीति सराहिये, मुये मीत की आस॥

मध्यम—राधिका के हिय झूलत सांवरो सांवरे के हिय झूलति राधा

अधम—सुर नर मुनि सब की यह रीती।
स्वारथ लागि करै सब प्रीती॥

गुरुविषयक—वंदौं गुरु पद पद्म परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥

राजाविषयक—वंदौं अवध भुवाल, सत्य प्रेम जिहिं राम पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तन तृण इव परि हरेउ॥
हम सेवक स्वामी सियनाहु।

देवता विषयक—हरि हर पद रति मतिन कुतर्की।
तिन कहँ सुखद कथा रघुवर की॥

मुनि—वंदौं मुनि पद कंज, रामायण जिन निर्मयो।
सखरस कोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित॥

रूप वचन वेढग कछु, लखि सुनि आवत हास।
चारि पदारथ पाइये, एक भंग की आस॥

भा०—कौतुकार्थ वचन वा रूप रचना से अह्लादयुक्त मनो विकार को हास कहते हैं। यथा—

चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराय सुनाय सुहोरी।
बेंदी विशाखा रची पदमाकर अंजन आजि समाजि के रोरी॥
लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह को कचुकी केसर बोरी।
हेरि हरे मुसकाइ रही अँचरा मुख दै वृषभानु किशोरी॥

अति उदार करतूतिदार सब अवधपुरी की बामा।
खीर खाय पैदा सुत करतीं पति कर कछु नहि कामा॥
सखी वचन सुनतै रघुनन्दन बोले मृदु मुसकाते।
आपन चलन सिखावहु प्यारी कहहु आन की बातें॥
कोउ नहिं जन्मे मातु पिता बिन बँधी वेद की नीती।
तुम्हरे तो महिते सब उपजैं अस हमरे नहिं रीती॥

सूचना—हास के भी तीन भेद हैं १ उत्तम, २ मध्यम, ३ अधम
उत्तम के २ भेद हैं १ स्मित २ हसित।

१ स्मित—बिना दांत देख पड़ते हुए विकसित कपोलो से युक्त मंद मुसकान को स्मित हास कहते हैं।

२ हसित—कुछ दांत देख पड़ते हुए प्रफुल्लित कपोलो से युक्त हास का हसित कहते हैं।

मध्यम के दो भेद १ विहसित २ उपहसित।

१ विहसित—अवसर पर मनोहर शब्द निकलने से थोड़ी कुछ मुँह सिकोड़ने और वदनराग दीखते हुए हास का विहसित कहते हैं।

२ उपहसित—नाक के फुलाने एवं कुटिल दृष्टि से देखने तथा ग्रीवा सिकोड़े हुए शब्द भरे हास को उपहसित कहते हैं।

अधम के दो भेद १ अपहसित २ अतिहसित।

१ अपहसित—सिर हिलते और आंसू निकलते हुए उद्धत हास को

२ अतिहसित-शरीर के कँपने, अधिक आंसुओं के बहने और ताली दे ऊंचे स्वर से ठठाकर हँसने को अतिहसित कहते हैं।

## (३) शोक ।

अहित भये दुख होय जो, वहै शोक परकास ।
सब के प्यारे राम को, क्यों दीनों बनवास ॥

भा०-अहित के लाभ अथवा हित की हानि से हृदय में जो दु:ख उत्पन्न होता है उसे शोक कहते हैं । यथा—

मात को मोह न द्रोह दुमात को सोच न तात के गात दहे को ।
प्राण को छोभ न बधु विछोभ न राज को लोभ न मोद रहे को ॥
एते पै नेक न मानत श्रीपति एते में सीय वियोग सहे को ।
ता रनभूमि में राम कह्यो मोहि सोच विभीषण भूप कहे को ॥

तापस वेष विशेष उदासी । चौदह वर्ष राम वनवासी ।
सुनि तिय वचन भूप उर शोकू । शशि कर छुवत विकल जिमि कोकू ॥

काम वाम की रासम की, भसम लगावत अंग ।
त्रिनयन के नैनन जम्यो, कछु करुणा को रंग ॥

## (४) क्रोध ।

अपमानादिक तें जहां, क्रोध हिये मजबूत ।
वक्ष अक्ष को फारिहौं, तौ अंजनि को पूत ॥

भा० शत्रु के किये हुए अपमानादि से उत्पन्न हुए मनोविकार को क्रोध कहते हैं ।

## (५) उत्साह ।

अपर वीर को देखिकै, चाव चढ़ै चित आय ।
मेघनाद को लखि लखन, हरषे धनुष चढाय ॥

भा०-उद्भट योद्धाओं को देख चित्त में जो सहर्ष चाव जगजगा उठता है उसे उत्साह कहते हैं । यथा—

इत कपि रीछ उत राछसनहीं की चमू डंका देत बंका गढ ते कढ़े लगी । कहै पदमाकर उमड जंग ही के हित चित्त में कछुक

चाप चावकी चढै लगी ॥ बानन के दाहिने को कर मे कमान कसि धाई
धुर धान आसमान मे मढै लगी । देखतै वनी है दुहु दलकी चढा चढी मे
राम दग हू प नेक लाली जो चढै लगी ॥

मेघनाद को लखि लखन, रूपे धनुष चढाय ।
दुखित विभीषण दवि रह्यो, कछु फूले रघुराय ॥

## (६) भय ।

भय विकृत कछु रूप लखि, ग्हा कीन प्रतीत ।
लखि बाढत बामन तनहिं, बाढी बलि हिय भीति ॥

भा०–रौद्र भयकर रूप का देखकर चित्त मे जो व्याकुलता पैदा होती है अथवा शरीर सशकित होता है उसे भय कहते हैं ।

तीन पैग पहुमी दई, प्रथमहिं परम पुनीत ।
बहुरि बढत लखि बामनहिं, भे बलि कछुक सभीत ॥

तु० रा०—सीतहि सभय देखि रघुराई ।
कहा अनुज सन सेन बुझाई ॥

## (७) ग्लानि ।

ग्लानि घृणित लखि वस्तु को, जहँ चित जाय घिनाय ।
सूपनखहिं विरूप लखि, सिय मुख लीन छिपाय ॥

भा०–किसी वस्तु के देखने, पव स्मरण करने अथवा छूने से चित्त में जो घृणा उत्पन्न होती है उसे ग्लानि वा जुगुप्सा कहते हैं । यथा—

सूपनखहिं विरूप लखि, रुधिर चुचात ।
सिय हिय मे घिन की लता, भई सु द्वै द्वै पात ॥

## (८) आश्चर्य ।

विस्मय युत लखि सुन कछू, अचरज रह उर छाय ।
मृदुलगात क्यों सावरो, गिरिवर लीन उठाय ॥

भा०–देखने से छूने से स्मरण करने मे अथवा कानों से कोई अद्भुत चरित्र सुनने पर हृदय में जो विस्मय उत्पन्न होता है उसे आश्चर्य कहते हैं । यथा—

२ अतिहसित-शरीर के कँपने, अधिक आंसुओं के बहने और ताली दे ऊचे स्वर से ठठाकर हँसने को अतिहसित कहते हैं।

## (३) शोक।

अहित भये दुख होय जो, वहै शोक परकास।
सब के प्यारे राम को, क्यों दीनों बनवास॥

भा०-अहित के लाभ अथवा हित की हानि से हृदय मे जो दुःख उत्पन्न होता है उसे शोक कहते हैं। यथा—

मात को मोह न द्रोह दुमात को सोच न तात के गात दहे को।
प्राण को छोभ न बधु विछोभ न राज को लोभ न मोद रहे को॥
एते पै नेक न मानत श्रीपति एते मे सीय वियोग सहे को।
ता रनभूमि में राम कह्यो मोहि सोच विभीषण भूप कहे को॥

तापस वेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी।
सुनि तिय वचन भूप उर शोकू। शशि कर छुवत विकल जिमि कोकू॥

काम वाम की खसम की, भसम लगावत अग।
त्रिनयन के नैनन जम्यो, कछु करुणा को रग॥

## (४) क्रोध।

अपमानादिक तें जहां, क्रोध हिये मजबूत।
वक्ष अक्ष को फारिहो, तो अंजनि को पूत॥

भा० शत्रु के किये हुए अपमानादि से उत्पन्न हुए मनोविकार को क्रोध कहते हैं।

## (५) उत्साह।

अपर वीर को देखिकै, चाव चढ़ै चित आय।
मेघनाद को लखि लखन, हरषे धनुष चढाय॥

भा०-उद्भट योद्धाओं को देख चित्त मे जो सदर्प चाव जगजगा उठता है उसे उत्साह कहते हैं। यथा—

इत कपि रीछ उत राक्षसनहीं की चमू डका देत बंका गढ ते कढै लगी। कहै पदमाकर उमड जग ही के हित चित्त में कछूके

ूर धान आत्ममान में मढ़ै लगी। देखते बनी है दुहू दलकी चढ़ा चढ़ी म
राम दृग पै नेक लाली जो चढ़ै लगी ॥

मेघनाद को लखि लखन, हरषे अनुप अघाय।
दुखित विभीषण दबि रह्यो, कछु फूले रघुराय ॥

## (६) भय।

भय विकृत कछु रूप लखि, रचो कौन प्रतीत।
लखि बाढ़त बामन तनहिं, बाढ़ी बलि हिय भीति ॥

भा०—बेढब भयकरं रूप का देखकर चित्त में जो व्याकुलता पैदा होती है अथवा शरीर सशकित होता है उसे *भय कहते हैं।*

तीन पैग पहुमी दई, प्रथमहि परम पुनीत।
बहुरि बढ़त लखि बामनहिं, भे बलि कछुक सभीत ॥

तु० रा०—सीतहि सभय देखि रघुराई।

ग्लानि घृणित लखि वस्तु को, जहँ चित जाय घिनाय।
सूपनखाहिं विरूप लखि, सिय मुख लीन छिपाय ॥

भा०—किसी वस्तु के देखने, एवं स्मरण करने अथवा छूने चित्त में जो घृणा उत्पन्न होती है उसे ग्लानि वा जुगुप्सा कह हैं। यथा—

सूपनखाहिं विरूप लखि, रुधिर स्रवि सुचुवात।
सिय हिय में घिन की लता, भई सु द्वै द्वै पात ॥

## (८) आश्चर्य।

विस्मय युत लखि सुन कछू, अचरज रह उर ....
मृदुलगात क्यों सावरो, गिरिवर लीन उठाय ॥

भा०—देखने से छूने से स्मरण करने से अथवा कानों से कोई ...भत चरित्र सुनने पर हृदय में जो विस्मय उत्पन्न होता है उसे आश्चर्य

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखाड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां छछियां भरि छांछ पे नाच नचावैं॥

बधु विरोध करो सिगरो झगरो निज होत सुधारस चाटत।
मित्र करै करनी रिपुकी धरनी धर देखि न न्याउ निपाटत॥
राम कहैं विष होत सुधा वर नारि सती पति सों चित फाटत।
भा विधना प्रतिकूल जबै तब ऊंट चढे पर कूकर काटत॥

देखत क्यो न अपूरब इंदु में है अरविंद रहे गहि लाली।
त्यों पदमाकर कीर बधू इक मोती चुगै मनों है मतवाली॥
ऊपर तें तमछाय रह्यो रवि की दवतें न दबै खुलि ख्याली।
यों सुनि बैन सखी के विचित्र भये चित चकित से बनमाली॥

## (६) निर्वेद।

हो विरक्त संसार सों, सो निर्वेद विचार।
यह असार संसार में, राम नाम है सार॥

भा०—परिश्रमादि के निष्फल होने पर सद्गति हित हृदय में जो पश्चात्ताप होकर वैराग्य उत्पन्न होता है उसे निर्वेद कहते हैं। यथा—

है थिर मन्दिर में न रह्यो गिरिकन्दर में न तप्यो तप जाई।
राज रिझाये न कै कविता रघुराज कथा न यथामति गाई॥
यों पछितात कछू पदमाकर कासो कहौ निज मूरखताई।
स्वारथहू न कियो परमारथ योंहीं अकारथ बैस बिताई॥

भोग में रोग वियोग संयोग में योग में काय कलेश कमायो।
त्यों पदमाकर वेद पुराण पढ्यो पढिकै बहु वाद बढायो॥
दौर्यो दुरास में दास भयो पै कहूं विसराम को धाम न पायो।
खायो गमायो सु ऐसेही जीवन हाय में राम को नाम न गायो॥

या लकुटी कर कामरिया पर राजति हू पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवों निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥
नैनन सों रस खानि जबै ब्रज के बनबाग तड़ाग निहारौं।
कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

मानुष हों तो वही रसखान बसों मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हों तो कहा बस मेरो चरों नित नंद के धेनु मँझारन॥
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर कारन।
जो खग हों तो बसेरो करों वहि कालिंदि तीर कदंब की डारन॥

## (१०) स्नेह।

पुत्रादिक की प्रीति जो, सोई नेह कहात।
गोद लिये अति प्रेम सों, हरि मुख चुम्बत मात॥

---

इति स्थायीभाव सातवां भाग समाप्त।

## रसवत् अलंकार।

अंग जान जहँ रस अरु भावा। सप्त अलंकृत रसवत गावा॥
रसवत् प्रेयस ऊर्जस्वित, और समाहित जान।
भावोदय पुनि संधि अरु, शबलताहि पहिचान॥

ये अलंकार भूषण चन्द्रिकादि ग्रन्थों के आधार से लिखे गये हैं। इनको अपरांग भी कहते हैं।

### १ रसवत्।

रसवत रस के अंग तें, प्रगट और रसभाव।

जयति जयति योगिन्द्र मुनि, कुम्भज महा अनूप।
देखे जाके चुलुक में, कच्छप मत्स्य स्वरूप॥

यहां अद्भुत रस का अंग मुनि विषयक रतिभाव है।

तु० रा०–कृपा वारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रण तारति हारी"

यहां वीररस का अंग करुण रस है।

श्री रघुवीर प्रताप ते, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहिं जाय प्रभु आन॥

सियहि विलोकि तक्यौ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे॥
यहां शृंगार का अंग वीररस है।
अति सुकुमार युगुल मम बारे। निशिचर सुभट महा बल भारे॥
यहां वात्सल्य का अंग भयानक है।
नाग पाश बस भये खरारी। अविगत अलख एक अविकारी॥
यहां अद्भुत का अंग शांत है।

## २ प्रेयस् ( प्रियतरं प्रेयः )

प्रेयस है अँग भाव को, कै कछु रस को भाव।
भावालंकारहु कहै, याही को कवि राव॥ यथा—
कब बसि मधि वाराणसी, धरि कोपीनहि चीर।
हे हर शिव शंकर जपत, फिरिहौं गंगा तीर॥
यहां चिंता संचारीभाव का अंग शम स्थायीभाव है।
सोह नवल तन सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी॥
यहां शृंगार का अंग देवरति भाव है।
भयउ कुलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जिहि जारी॥
यहां भय से चिंता और बढी।

प्रेयस् का पुंल्लिंग रूप प्रेयान् और स्त्रीलिंग रूप प्रेयसी होता है, प्रेयान्=अति प्रिय पुरुष, प्रेयसी=अति प्रिय स्त्री अर्थात् सीता प्रेयसी और राम प्रेयान् हुए।

## ३ ऊर्जस्वित ( ऊर्जः बले )

रसाभास वा भावाभास, ऊर्जस अलंकार परकास।
(अनौचित्य प्रवृत्तत्वे आभासो रस भावयोः)

अनुचित रस को रसाभास और अनुचित भाव को भावाभास कहते हैं। इनमे से एक वा दोनो रहे, सोई ऊर्जस्वित अलंकार है। आभास झलक को कहते हैं।

### रसाभास।

रसाभास अनुचित कथन, सीमा सों नहिं काम।
चराचरहुं मर्याद तजि, भये सकल बस काम॥

शृंगार रसाभास—१ सब के हृदय मदन अभिलाषा।
लता विलोकि नवहिं तरु शाखा॥
२ प्रभु लक्ष्मन पहँ बहुरि पठाई।
३ देखि रूप मुनि विरति विसारी।
बड़ी बार लग रहे निहारी॥

हास्य रसाभास—सुनत वचन विहँसे नृपय, गिरि सभय तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसे को गेह॥

करुण रसाभास—सुनि सुत वचन सनेहमय, कपट नीर भर नैन।
भरत हृदय जनु शूल सम, पापिनि बोली बैन॥

रौद्र रसाभास—अति रिस बोले वचन कठोरा।
कहु जड़ जनक धनुप किहि तोरा॥
बेगि दिखाउ मूढ न तु आजू।
उलटौं महि जहँ लगि तुव राजू॥

वीर रसाभास—१ वीर वृत्ति तुम धीर अक्षोभा।
गारी देत न पावहु शोभा॥
२ कपि बल विपुल सराहन लागा।

भयानक रसाभास—कर कुठार मैं अकरुण कोही।
आगे अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छाडौं बिन मारे।
केवल कौशिक शील तुम्हारे॥

बीभत्स रसाभास—भेष अमंगल मंगल राशी।

अद्भुत रसाभास—रोम रोम हरि के रहत, किमि कोटिक ब्रह्मंड।

शांत रसाभास—कुछु सतिभाव कहौं सहिपाला।
यहा वसत बीते बहु काला॥
तातें शुभ रहौं जग माहीं।
हरि तजि किमपि प्रयाजन नाहीं॥

सियहि विलोकि तक्यो धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे॥

यहां शृंगार का अंग वीररस है।

अति सुकुमार युगुल मम वारे। निशिचर सुभट महा बल भारे॥

यहां वात्सल्य का अंग भयानक है।

नाग पाश वस भये खरारी। अविगत अलख एक अविकारी॥

यहां अद्भुत का अंग शांत है।

## २ प्रेयस् (प्रियतरं प्रेयः)

प्रेयस है अँग भाव को, कै कछु रस को भाव।
भावालंकारहु कहै, याही को कवि राव॥ यथा—

कब वसि मधि वाराणसी, धरि कौपीनहिं चीर।
हे हर शिव शंकर जपत, फिरिहौं गंगा तीर॥

यहां चिंता सञ्चारीभाव का अंग शम स्थायीभाव है।

सोह नवल तन सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी॥

यहां शृंगार का अंग देवरति भाव है।

भयउ कुलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जिहिं जारी॥

यहां भय से चिंता और बढी।

प्रेयस् का पुल्लिंग रूप प्रेयान् और स्त्रीलिंग रूप प्रेयसी होता है। प्रेयान्=अति प्रिय पुरुष, प्रेयसी=अति प्रिय स्त्री अर्थात् सीता प्रेयसी और राम प्रेयान् हुए।

## ३ ऊर्जस्वित (ऊर्ज बले)

रसाभास वा भावाभास, ऊर्जस अलंकार परकास।
(अनौचित्य प्रवृत्तत्वे आभासो रस भावयोः)

अनुचित रस को रसाभास और अनुचित भाव को भावाभास कहते हैं। इनमें से एक वा दोनो रहैं सोई ऊर्जस्वित अलंकार है। आभास झलक को कहते हैं।

### रसाभास।

रसाभास अनुचित कथन, सीमा सौं नहिं काम।
चराचरहुं मर्य्याद तजि, भये सकल वस काम॥

रसाभास—१ सब के हृदय मदन अभिलाषा।
लता विलोकि नवहिं तरु शाखा॥
२ प्रभु लक्ष्मन पहँ बहुरि पठाई।
३ देखि रूप मुनि विरति विसारी।
बडी बार लग रहे निहारी॥

हास्य रसाभास—सुनत बचन बिहँसे ऋषय, गिरि सम्भव तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसे को गेह॥

करुण रसाभास—सुनि सुत बचन सनेहमय, कपट नीर भर नैन।
भरत हृदय जनु शूल सम, पापिनि बोली बैन॥

रौद्र रसाभास—अति रिस बोले बचन कठोरा।
कहु जड़ जनक धनुष किहि तोरा॥
बेगि दिखाउ मूढ़ न तु आजू।
उलटौं महि जहँ लगि तुव राजू॥

वीर रसाभास—१ वीर वृत्ति तुम धीर अक्षोभा।
गारी देत न पावहु शोभा॥
२ कपि बल विपुल सराहन लागा।

भयानक रसाभास—कर कुठार मैं अकरुण कोही।
आगे अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छाडों बिन मारे।
केवल कौशिक शील तुम्हारे॥

बीभत्स रसाभास—भेष अमंगल मंगल राशी।

अद्भुत रसाभास—राम राम हरि के रहत, किमि कोटिक प्रकट।

शान्त रसाभास—सुनु सतिभाव कहौं महिपाला।
यहाँ बसत बीते बहु काला॥
तातें गुप्त रहौं जग माहीं।
हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥

२ गुरु सन कहा करिय प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेद न होई॥
३ भागे भालु बली मुख यूथा।
४ प्रभु विलोकि सर सकहि न डारी।
थकित भये रजनीचर भारी॥

रसाभास+भावाभास।

वन वन भीलन सँग रमत, तुव वैरिन की वाम।
अरु अरि तुव गुण गणत, नित प्रबल प्रतापी राम॥

यहां भीलन सग रमत रसाभास, अरि गुण गणत भावाभास है, यही ऊर्जस्वित अलकार है।

## (४) समाहित (समाधाने)

रस अरु भावहिं शांति कर, सोइ समाहित जान।

जहा कोई रस वा भाव उत्पन्न होकर बढने नहीं पाता दूसरा भाव उत्पन्न होकर प्रबल हो जाता है उसे शाति वा समाहित अलकार जानो। यथा—

पिय ठाढे मे मान लखि, तिय इत रही विजोय॥
देखत हँसि दीन्हो ललन, तिय तब दीनी रोय॥
यहां शृगार रस का अंग कोप शानि है।

देत चाप आपुहिं चढि गयऊ। परशुराम मन विस्मय भयऊ॥
यहां गर्व की शाति है।

अटादुरी मे निरखि हरि, फौधा कीसी छांह।
चकित हो समुझे बहुरि, लखि राधे की बाह॥
यहां विस्मय को मति संचारी ने शात किया।

पुनि संभार उठी सो लका। जोरि पानि कर विनय ससका॥
यहा वीररस का अंग क्रोध की शांति है।

## (५) भावोदय।

भावोदय रसभाव जब, उदय होय रहि जाय।

जहा अन्य सामग्री प्रवल होने के कारण रस या भाव अंकुरित रह जाता है सो भावोदय है। यथा—

चहत विचारि विचारि उर, कब मिलिहैं घनश्याम ॥
यहां शृंगार रस का अंग औत्सुक्य संचारी का उदय है।
वेंदी पिय पट सो लगी, लीनी अली उतारि।
बूड़ गई अवलोकि उन, सकुच सिंधु सुकुमारि ॥
यहा व्रीडा संचारीभाव का उदय है।
रावण आवत सुन्यो सकोहा। देवन तके मेरु गिरि खोहा ॥
यहा त्रास संचारीभाव का उदय है।

## (६) भावसंधि।

रस अरु भावहिं संधि जो, भाव संधि सोइ जान।

जब एक रस वा भाव मन को एक ओर और दूसरा दूसरी ओर खींचता है तब भाव संधि कहते हैं। यथा—

चलत वीर संग्राम को, लखि बिलखी निज बाल।
अरुण वरण तन में उठे, विपुल-पुलक ततकाल ॥
यहा रतिभाव और औत्सुक्य की संधि है।
नीके निरखि नैन भरि शोभा। पितु प्रण सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
यहा हर्ष और स्मृति की संधि है।
दुहु समाज हिय हर्ष विषादू।
यहा हर्ष और विषाद की संधि है।
सकुचत कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरशन लालच मन माँहीं ॥
यहा लाज और हर्ष की संधि है।

## (७) भाव शबलता।

मिलत बहुत रसभाव जहँ, भाव शबलता जान।

जहां अनेक रस तथा भावों की एक साथही उत्पत्ति हो सो शबलता है।

वंशीधर वनमाल धर, हरि उर माहिं रहाय।
कित मे कित यह कित मिलन, सजनी ध्यौंत बताय ॥

सिय शोभा हिय वरणि प्रभु, आपनि दशा विचारि।
बोले शुचि मन अनुज सन, वचन समय अनुहारि॥
तात जनकतनया यह सोई। धनुष यज्ञ जिहि कारण होई॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करति प्रकाश फिरत फुलवाई॥
जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥
सो सब कारण जान विधाता। सुभग अंग फरकहि सुनु भ्राता॥
रघुवंसिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपथ पग धरहिं न काऊ॥
मुहि अतिशय प्रतीत जिय केरी। जिहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥
जिनकी लहहि न रिपु रण पीठी। नहिं लावहि पर तिय मन डीठी॥
मंगल लहहिं न जिनके नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करत मधुप इव पान॥

इसमे मोह, वितर्क, हर्ष, मति, धृति इत्यादि अनेक भाव हैं।

हरि संगति सुखमूल सखि, पै परपची गाउँ।
तू कहु तौ तजि शंक उत, हंग बचाय द्रुत जाउँ॥

यहा हरि से मिलने की उत्कंठा, गाव के प्रपची लोगो की शका, दीनता, धृति, आवेग, अवहित्था अनेक भाव हैं।

सूचना—इन सात भेदो के अतिरिक्त किसीर ने सकर नामक एक भेद और माना है। मेरी सम्मति मे यह भाव शबलता के ही अन्तर्गत है। सकर का अर्थ है मिश्रण। यथा—

महि परत उठि भट लरत मरत न करत मायो अति घनी।
सुर डरत चौदा सहस्र निशिचर एक श्रीरघुकुल मनी॥
सुर मुनि सभय अवलोकि माया नाथ अति कौतुक करे।
देखत परस्पर राम करि सग्राम रिपुदल लर मरे॥

यहा वीर, भयानक और अद्भुत रसो का मिश्रण अर्थात् सकर है।

---

इति रस वदादि अलंकार आठवाँ भाग समाप्त।

# रस दोष वर्णन ।

जिस रस के जो रस विरोधी हैं उनका उल्लेख नीचे करते हैं—

| | | |
|---|---|---|
| शृंगार के विरोधी— | | करुण, बीभत्स, रौद्र, वीर भयानक |
| हास्य | ,, | करुण, बीभत्स, भयानक, रौद्र |
| करुण | ,, | हास्य, शृंगार |
| रौद्र | ,, | हास्य, शृंगार, अद्भुत, शांत |
| वीर | ,, | शांत, शृंगार, भयानक |
| भयानक | ,, | शांत, शृंगार, हास्य |
| बीभत्स | ,, | शृंगार |
| अद्भुत | ,, | रौद्र |
| शांत | ,, | रौद्र, शृंगार, वीर, हास्य, भयानक |

ये विरोधी रस जहां देशभेद कालभेद समझकर और अंगांगिभाव द्वारा वर्णित किये जाते हैं वहां वे दूषित नहीं समझे जाते हैं ।